जनवरी 2014 मूल्यः 20 रुपए

सामयिक वार्ता

संस्कृति के सवाल

बरबादी की बाढ़, समझ का अकाल

सचिन स्तुति का महापर्व

ब्राह्मण बन गया डोम

मुफ्त दवा योजना

वियतनाम का बांध विरोध

आपातकाल में किशन पटनायक

एक अनूठा अस्पताल

मंडेला एक जज्बा है

मुझे तलाश है

वे सब कई समूहों में थे
मैं एक अकेला बैठा था
वे सब एक दूसरे को जानते थे
एक दूसरे के चुटकुलों पर हंसते थे
वे परिभाषाएं गढ़ रहे थे
या बनी हुई परिभाषाओं को
अपने नाम दे रहे थे।
उनका घेरा मेरे नजदीक आता गया
शोर गहरा होता गया
वे खिलखिला रहे थे अपने चुटकुलों पर
मैंने भी मुस्कुराने की कोशिश की
पर वो चुटकुले मुझ पर ही थे।

मैं समझ गया
पराई भाषा
पराए लहजे
पराई परिभाषाओं
का नुकीला कोना मुझे कोंचने लगा।

मैं बोलता तो वे हंसने लगते
उनके हंसने का स्वर ही मुझे पुरातन
साबित करने को काफी होता
मैं रो भी नही सकता
मैं खुद को उनसा ढाल भी नहीं सकता
क्योंकि मेरे उनकी नकल करते ही
इजाद कर लेंगे वे
एक और नई भाषा, नई दुनिया
मेरी ही नई परिभाषा गढ़ लेंगे
मेरे चिल्लाने, रोने पर थीसिस लिख डालेंगे वे
मुझे अपनी गढ़ी परिभाषाओं में डालेंगे वे
मुझे अपनी गढ़ी परिभाषाओं में डाल
मेरी आवाज छीन लेंगे मुझसे।

मुझे तलाश है मेरे पुरखों की
या कम से कम
अनगढ़, उनकी नजरों में अनपढ़,
लोगों की
मुझे तलाश है अपनी भाषा की।
मुझे उतार फेंकना है
उनका पहनाया जामा।
धूल धूसरित उघाड़े ही बढ़ें हम
माटी के पुतले
पुरातन या भोंदू
घेर कर चिल्लाएं
और चले जाएं आगे।

छूट जाए पीछे
ये नफीस मसीहा
शब्द विन्यासी
और टूटे ये तिलिस्म
जिसमें मुद्दई, गवाह, जज
दमन और प्रतिरोध
सब वे ही हैं
उनके ही लफ्ज बयां करते हैं
सब कुछ
और हमारे पल्ले पड़ता है
अजनबीपन
और उनकी गढ़ी परिभाषाएं।

इकबाल अभिमन्यु

028, पेरियार छात्रावास, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067 फोन 09013002488
iqbalbalu@gmail.com

सामयिक वार्ता

जनवरी 2014, वर्ष 37, अंक 5–6

संस्थापक संपादकः किशन पटनायक

संपादकः सुनील

उपसंपादकः बाबा मायाराम

संपादन सहयोगः

सत्येन्द्र रंजन, अरविंद मोहन, हरिमोहन, राजेन्द्र राजन, प्रियदर्शन, अरुणकुमार त्रिपाठी, मेधा, चंदन श्रीवास्तव

परामर्श मंडलः

सच्चिदानंद सिन्हा, अशोक सेकसरिया, योगेन्द्र यादव, कश्मीर उप्पल

प्रबंधकः चंद्रशेखर मिश्रा

कार्यालयः सामयिक वार्ता, द्वारा चंद्रशेखर मिश्रा, दूसरी लाइन, इटारसी, जिला होशंगाबाद, म.प्र. पिन 461111

फोनः 09425040452, 9424437330

(संपादन) 09993737039 (प्रबंध)

ई–मेल varta3@gmail.com

आवरण चित्रः बंशीलाल परमार

सदस्यता शुल्क

वार्षिक शुल्कः 100 रूपए

संस्थागत वार्षिक शुल्कः 200 रूपए

पांच वर्षीय शुल्कः 600 रूपए

आजीवन शुल्कः 2000 रूपए

सदस्यता शुल्क चेक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा 'सामयिक वार्ता ट्रस्ट' के नाम से दफ्तर के पते पर भेजें।

सदस्यता/सहायता/एजेंसी की राशि कोर बैंकिंग के जरिए पंजाब नेशनल बैंक में कहीं भी उपरोक्त नाम से खाता क्रमांक **3979000100117987** (ifsc code **punbo397900**) में जमा कर सकते हैं। जमा करने की सूचना और अपना पता हमें पत्र से अवश्य भेजें। आप पहले से वार्ता के ग्राहक हैं लेकिन वार्ता आप तक नहीं पहुंची हो तो एक पोस्टकार्ड डालकर हमें भूल–सुधार का मौका दें।

इस अंक में

13 **संस्कृति के सवाल**
सच्चिदानंद सिन्हा

17 **बरबादी की बाढ़, समझ का अकाल**
अनुपम मिश्र

21 **सचिन स्तुति का महापर्व**
रामफजल

29 **हिफाजत और हमले के बीच**
प्रियदर्शन

32 **मोहब्बत में ब्राह्मण से डोम**
कविता आर्य

34 **मुफ्त दवा की राजस्थानी योजना**
नरेन्द्र गुप्ता

38 **आदिवासियों को लेकर सियासी खेल**
अनिल कुमार वर्मा

40 **फिर उलझा नेता**
अरुण कुमार त्रिपाठी

42 **वियतनाम में बांधों पर रोक**
इंटरनेशनल रिवर्स

44 **आपातकाल में किशन जी**
मनोज वर्मा

48 **नेल्सन मंडेला एक जज्बा**
चिन्मय मिश्र

50 **सदियों के संताप के विरुद्ध**
अरुण कुमार त्रिपाठी

52 **एक अनूठा अस्पताल**
बाबा मायाराम

संपादकीय

राजनीति पर हावी अर्थनीति

पांच प्रांतों के विधानसभा चुनाव के नतीजों से भारतीय राजनीति की नई प्रवृतियों के संकेत मिलते हैं। महत्वपूर्ण संकेत यह नहीं है कि नरेंद्र मोदी आ रहा है। कुछ समाचार माध्यमों ने कहा कि यह नरेंद्र मोदी की लहर थी या मोदी का जादू चल गया।

लेकिन ऐसा निष्कर्ष निकालना कई कारणों से सही नहीं है। एक तो सीधा सवाल खड़ा होता है कि यह जादू दिल्ली में क्यों नहीं चला, जहां मोदी ने कई सभाएं की और आखिरी दिनों में जोर लगाया ? इसका मतलब है कि जहां त्रिकोणीय या चतुष्कोणीय संघर्ष होगा, वहां के नतीजे अलग हो सकते हैं। दरअसल इन चारों बड़े प्रांतों में अभी तक तीसरी ताकतवर पारटी नहीं रही है। ये प्रांत भारतीय जनता पारटी के पंरपरागत गढ़ भी रहे हैं। जब सवाल उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम, ओडिशा या दक्षिण के राज्यों का आएगा तो हो सकता है कि वहां भाजपा नदारद रहे या तीसरे-चौथे नंबर पर रहे।

यह भी साफ है कि मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ की चुनावी जीत में नरेंद्र मोदी का कम और स्थानीय मुख्यमंत्री व उनकी छवियों का योगदान ज्यादा रहा है। जैसे मध्यप्रदेश में भाजपा ने शिवराज के नाम पर वोट मांगा है। यदि वहां कोई लहर थी तो वह शिवराज लहर थी, मोदी लहर नहीं। हर जगह चुनाव में स्थानीय मुद्दे और कारण महत्वपूर्ण रहे हैं।

लेकिन इसमें शक नहीं है कि इन चुनावों से भाजपा और मोदी का ग्राफ बढ़ा है व मनोबल बढ़ा है। आगामी लोकसभा चुनाव में भाजपा की सीटें तो बढ़ेंगी ही, यदि वह उसे कांग्रेस-भाजपा और राहुल-मोदी के बीच सीधा मुकाबला बनाने में सफल रही तो सत्ता के नजदीक पहुंच सकती है।

कांग्रेस का अवसान

दरअसल यदि एक पंक्ति में इन विधानसभा चुनाव के नतीजों को समझना हो तो यह मुख्य रूप से मौजूदा केंद्र सरकार के खिलाफ एक वोट है। इन चुनावों ने यह संकेत तो निर्विवाद रूप से दिया है कि देश का मतदाता मनमोहन-सोनिया-राहुल के नेतृत्व वाली मौजूदा सरकार से बुरी तरह ऊब गया है, त्रस्त हो गया है और बदलाव चाहता है। इसके तीन कारण हैं। **पहला** और सबसे प्रमुख कारण इस सरकार की आर्थिक नीतियां हैं। महंगाई और रोजी-रोटी का संकट इस चुनाव का सबसे बड़ा मुद्दा रहा है और भाजपा ने इसे भुनाया है। भ्रष्टाचार **दूसरे** नंबर का मुद्दा रहा है। एक के बाद एक विशाल घोटालों ने सारे रिकार्ड तोड़ दिए हैं और इस सरकार को देश के इतिहास की सबसे भ्रष्ट सरकार बना दिया है। ऊपर से अन्ना आंदोलन या बाबा रामदेव के प्रति इसके रवैये, कैग की रपटों और सर्वोच्च न्यायालय की फटकारों ने इसकी विश्वसनीयता को जनता की नजरों में तेजी से गिराया है। एक के बाद एक उसने कई बड़ी गलतियां की है।

तीसरा कारण इसी से जुड़ा है। वह है कांग्रेस में नेतृत्व का संकट और कांग्रेस पारटी की बुरी हालत। मनमोहन सिंह एक नौकरशाह हैं जिनकी पूरी निष्ठा वैश्वीकरण की नीतियों के प्रति है, देश की जनता के प्रति नहीं। इसीलिए वे और उनकी टीम जनता के कष्टों से बेखबर नवउदारवादी नीतियों और नुस्खों को पूरी शिद्दत से लागू करने में लगी है। यहां तक कि चुनावों से पहले डीजल, पेट्रोल, रसोई गैस या खाद की कीमतें बढ़ाने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं होता। सोनिया गांधी व्यक्तिगत रूप से भली महिला मालूम होती हैं, और राष्ट्रीय सलाहकार परिषद बनाकर उन्होंने कुछ राहत देने की कोशिश की, लेकिन देश के जनजीवन पर नवउदारवादी हमलों के मुकाबले यह नाकाफी थी। कुल मिलाकर आम जनता के कष्टों और देश की असलियतों के बारे में उनकी भी कोई समझ नहीं है। और राहुल गांधी का तो कहना ही क्या ? उसकी बचकानी समझ और बचकानी हरकतों ने कांग्रेस पारटी का संकट बढ़ाया ही है। रही-सही कसर चमचों ने पूरी कर दी है। मणिशंकर अय्यर और जयराम रमेश जैसे गिने-चुने समझदार लोगों को पूरी तरह किनारे

कर दिया गया है। माना यह जाता है कि प्रणब मुखर्जी को भी राष्ट्रपति बनाकर राह से हटाया गया है, क्योंकि वे कंपनीपरस्त नवउदारवादी नीतियों को लागू करने में पूरी तरह समर्पित नहीं थे। कपिल सिब्बल, चिदंबरम, शरद पवार, आनंद शर्मा और कमलनाथ जैसे लोग बहुत ताकतवर हो चले हैं। वे सरकार और (शरद पवार को छोड़ दें तो) पारटी दोनों को चला रहे हैं और दोनों को खुदकुशी की ओर ले जा रहे हैं।

कांग्रेस पारटी और केंद्र सरकार ने समझदारी व कुशलता से मसलों को सुलझाने के बजाय कैसे टालमटोल, नफा-नुकसान के क्षुद्र गणित और अक्षमता से उलझाया है, इसका अच्छा उदाहरण तेलंगाना है। पिछले पांच सालों में सैकड़े से ज्यादा जानें लेने के बाद अलग तेलंगाना की घोषणा हुई, तो भी समाधान नजर नहीं आ रहा है। कांग्रेस के लिए शर्म की बात यह है कि अब इसके ही सांसद सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव का नोटिस दे रहे हैं। जिस आंध्र प्रदेश में दस साल पहले भारी बहुमत से कांग्रेस का एक लोकप्रिय मुख्यमंत्री बना था, वहां अब सीमांध्र व तेलंगाना दोनों में कांग्रेस का सफाया निश्चित हो चला है।

नेतृत्वहीन और दिशाहीन कांग्रेस में गुटबाजी, झगड़े और क्षुद्र स्वार्थों के लिए छीना-झपटी बढ़ती गई है। इसलिए मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में वह पिछले दस सालों में सक्रिय व जागरुक विपक्ष की भूमिका निभाने और भाजपा सरकारों की कमियों को भुनाने में भी असफल रही है। कुल मिलाकर, कांग्रेस का सफाया (न कि मोदी का उदय) इन चुनावों का प्रमुख संदेश है। यदि यही हालात बने रहे, तो आने वाले समय में कांग्रेस तेजी से सिकुड़ सकती है और अप्रासंगिक बन सकती है। बिहार-यूपी में कांग्रेस की जो हालत हुई है, वह देश के स्तर पर भी हो सकती है।

असली सवाल अर्थनीति-विकास नीति का है

कांग्रेस (और देश) के इस बंटाढार में सबसे प्रमुख भूमिका उन आर्थिक नीतियों की है जिन्हें 1991 से मनमोहन सिंह के जरिये इस देश पर थोपा गया है। इस नजरिये से कांग्रेस ही नहीं, आजाद भारत के इतिहास को दो कालों में बांटा जा सकता है। 1950 से 1990 तक नेहरु काल रहा है, जिसमें गलत विकास नीति को देश के ऊपर लादा गया है। फिर 1991 से मनमोहन काल शुरु हुआ है, जिसमें गलत विकास नीति के साथ गलत अर्थनीति को भी देश पर थोपा गया है। गलत विकास नीति के साथ गलत अर्थनीति का यह मेल ज्यादा विनाशकारी रहा है। इसने भारत को पूरी तरह देशी-विदेशी कंपनियों की लूट के हवाले कर दिया। रोजगार विनाश, पर्यावरण विनाश, गैर बराबरी, महंगाई, विकृतियां और शोषण नई ऊंचाई यों पर पहुंचे। सोनिया गांधी और उनकी सलाहकार परिषद ने कुछ योजनाएं और कानून बनाकर इनके दुष्प्रभावों को कम करने और मरहम लगाने की कोशिश की। लेकिन बुनियादी नीतियां गलत होने से घाव इतने बड़े हैं कि मरहम ने काम नहीं किया।

उल्टे इन योजनाओं व कानूनों ने भ्रम पैदा किया, कई प्रगतिशील बुद्धिजीवियों और एनजीओ को इनमें उलझाया और असली मुद्दों से ध्यान हटाया। समय-समय पर राष्ट्रीय सलाहकार परिषद, योजना आयोग या अन्य समितियों-पदों से जुड़ने वाले ये बुद्धिजीवी और समाजकर्मी भले लोग हैं, उनके इरादे नेक हैं, उनकी कोशिशों से इस देश में कुछ अच्छे काम भी हुए हैं, लेकिन इस देश के इतिहास की सबसे भ्रष्ट, सबसे जन-विरोधी और राष्ट्र-विरोधी सरकार को वैधता प्रदान करने और उस पर 'मानवीय चेहरे' का मुखौटा चढ़ाने में सहयोग करने का काम भी जाने-अनजाने में उन्होंने किया है। यदि कल नरेंद्र मोदी द्वारा इस देश पर राज करने की हालत बनती है, तो इसकी कुछ जिम्मेदारी उनकी भी होगी। प्रखर बुद्धिजीवी होते हुए भी वे समग्रता से चीजों को नहीं देख पाए।

भारतीय राजनीति के वैचारिक दिवालिएपन और नीतिगत एकरूपता का आलम यह है कि बीच-बीच में केंद्र में या प्रांतों में गैर-कांग्रेसी सरकारें आईं तो वे भी इन्हीं नीतियों पर चलती रही। यदि केंद्र में अगली सरकार नरेंद्र मोदी की बनती है तो वह भी इसी रास्ते पर चलेगी। बल्कि शायद ज्यादा तेजी और मुस्तैदी से चलेगी। नरेंद्र मोदी के उदय के पीछे कंपनियों की लॉबी के समर्थन की प्रमुख भूमिका है। वे यह मानकर चल रही हैं कि नरेंद्र मोदी ज्यादा कुशलता, सख्ती और उत्साह से उनके हितों को पूरा करेगा। इस तरह यदि आगामी लोकसभा चुनाव में मोदी सत्ता पर काबिज

होता है, तो बदलाव होकर भी नहीं होगा। जनता आर्थिक नीति-विकास नीति से उपजे कष्टों के चलते सत्ता परिवर्तन करना चाहेगी, लेकिन वे ही नीतियां चलती रहेगी।

भारतीय राजनीति की इस विडंबना का कारण यह है कि देश का कोई भी प्रमुख राजनैतिक दल आर्थिक नीतियों को चुनाव का मुद्दा नहीं बनाता है। इन नीतियों पर चुनावों में बहस नहीं होती। यहां तक कि कम्युनिस्ट पारटियां भी (मार्क्स द्वारा आर्थिक कारणों को बुनियादी और इतिहास निर्धारक मानने के बावजूद) सांप्रदायिकता को ज्यादा बड़ा खतरा मानती रही हैं और कई मौकों पर कांग्रेस को प्रत्यक्ष और परोक्ष सहयोग देकर आर्थिक मुद्दों पर अपने विरोध की धार को भौंथरा व निष्प्रभावी बनाती रही हैं। विडंबना यह भी है कि भारतीय राजनैतिक क्षितिज पर उभर रही नई पारटी- 'आम आदमी पारटी' - ने भी देश के लिए नुकसानदेह वैश्वीकरण-उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को चुनावी मुद्दा बनाने या उन पर कोई स्पष्ट मत बनाने की जरूरत नहीं समझी है।

आजाद भारत के इतिहास को दो कालों में बांटा जा सकता है। 1950 से 1990 तक नेहरु काल रहा है, जिसमें गलत विकास नीति को देश के ऊपर लादा गया है। फिर 1991 से मनमोहन काल शुरु हुआ है, जिसमें गलत विकास नीति के साथ गलत अर्थनीति को भी देश पर थोपा गया है। गलत विकास नीति के साथ गलत अर्थनीति का यह मेल ज्यादा विनाशकारी रहा है।

भारत के राजनैतिक दलों की इस नालायकी के कारण पिछले दशकों में भारत की राजनीति पर नई अर्थनीति पूरी तरह हावी हो गई है। देश के मतदाताओं को इस नीति और उसके दुष्प्रभावों पर अपनी राय व्यक्त करने का मौका नहीं मिलता है। इस मायने में भी भारत का लोकतंत्र नाकारा और निष्प्रभावी साबित हो रहा है।

जरुरी है वैचारिक पारदर्शिता

देश के राजनैतिक रंगमंच पर एक नई पारटी का धमाकेदार पदार्पण इन चुनावों की एक प्रमुख घटना है। दिल्ली में 'आम आदमी पारटी' की जोरदार सफलता ने पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींचा है और काफी लोगों को रोमांचित किया है। इसने जाहिर किया है कि देश की जनता मौजूदा चालू पारटियों से ऊब गई है, बदलाव चाहती है और जहां कोई ताकतवर विकल्प उसे दिखाई देता है, वोट भी देती है। राजनीति को इन पारटियों के चंगुल से निकालना संभव है, सिद्धांत और ईमानदारी को राजनीति का आधार बनाया जा सकता है, और मतदाताओं ने भ्रष्टाचार को मन से स्वीकार नहीं किया है, यह दिल्ली के चुनाव नतीजों ने दिखाया है।

पूरे देश में बदलाव की चाह और वैकल्पिक राजनीति की संभावना को इससे बल मिला है। एक तरह से मोदी के विजय रथ को भी 'आप' ने रोका है। इसमें निस्वार्थ रूप से देश के लिए कुछ कर गुजरने की तमन्ना वाले युवा बड़ी संख्या में दिखाई दे रहे हैं। नए चेहरे सामने आए हैं। जब राजनीति में दो नंबरी धन और सत्तालिप्सा का बोलबाला है, तब शुचिता, पारदर्शिता और घोषणाओं के प्रति गंभीरता की नई राजनैतिक संस्कृति बनाने की कोशिश उन्होंने की है। इसमें कुछ कमजोरियां भी हैं, जैसे व्यक्ति प्रधानता और हर जगह केजरीवाल का नाम और चेहरा आगे करना। लेकिन इसके बावजूद 'आप' की कोशिशों और हौसले को दिल्ली की जनता के साथ पूरे देश के लोगों की सराहना व सद्भावना हासिल हुई है।

दिल्ली की इस सफलता को देश के स्तर पर दुहराना 'आप' के लिए आसान नहीं होगा। दिल्ली में जितनी मेहनत उसने की, जितने कार्यकर्ता और संसाधन लगाए, पांच महीने बाद होने वाले लोकसभा चुनाव में देश के स्तर पर ऐसा हो पाएगा, इसमें शंका है। शायद 'आप' अन्य समूहों व छोटे दलों के साथ गठबंधन बनाए। फिर दिल्ली का मॉडल देश में लागू करते वक्त यह भी ध्यान में रखना होगा कि देश दिल्ली नहीं है। देश की 65 फीसदी जनता अभी भी गांवों में बसती है। वहां इंटरनेट और सोशल मीडिया से संपर्क नहीं किया जा सकता। महानगरों के बाहर मध्यम वर्ग भी

इतना बड़ा नहीं है। वहां के मुद्दे भी काफी विविध तरह के हैं। इन मुद्दों को हल करने के लिए 'आप' की वैचारिक तैयारी भी नहीं दिखाई दे रही है।

'आप' की विचारधारा क्या है ? चुनाव नतीजे के बाद एक अंगरेजी अखबार को दिए गए साक्षात्कार में अरविंद केजरीवाल ने व्यवस्था परिवर्तन की अपनी अवधारणा को इन शब्दों में व्यक्त किया-

''मौजूदा व्यवस्था में अच्छा शासन नहीं दिया जा सकता है। आपको राजनीति को बदलने के साथ व्यवस्था भी बदलना होगा और इसके लिए राजनैतिक विकेंद्रीकरण तथा पारदर्शिता लाना होगा। यही हमारी विचारधारा है।''(*दी हिंदू*, 12 दिसंबर 2013)

केजरीवाल ने अपनी पुस्तक *'स्वराज'* में भी इन्हीं बातों पर जोर दिया है। 'आप' की वेबसाइट, इसके घोषणापत्र, परचों और सभाओं में भी यदि सिद्धांतों को खोजा जाएगा तो ये ही दो चीजें उभर कर आती हैं। इनके साथ लोकपाल कानून और चुनाव सुधारों (प्रतिनिधि वापसी का अधिकारी और नोटा) की भी बात वे करते हैं। जाहिर है कि व्यवस्था परिवर्तन के लिए इतने सूत्र नाकाफी हैं।

विकास का मॉडल और वैश्वीकरण की नई व्यवस्था पिछले कुछ समय से सबसे बड़े मुद्दे उभर कर आए हैं। भारत ही नहीं दुनिया के ज्यादातर संकटों और संघर्षों का इनसे गहरा रिश्ता है। लेकिन अभी तक 'आप' की कोई स्पष्ट राय इन पर नजर नहीं आती। वह दिल्ली में पानी के निजीकरण का विरोध करती है, लेकिन कुल मिलाकर निजीकरण की आंधी और उसके पीछे की सोच व ताकतों पर वह बात नहीं करती है। वह सत्ता में आने पर खुदरा व्यापार में विदेशी पूंजी निवेश को इजाजत नहीं देने की घोषणा करती है, लेकिन अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में विदेशी पूंजी के मामले पर मौन है। विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन, कंपनी राज, साम्राज्यवाद, मुक्त व्यापार, आंतरिक उपनिवेश, उपभोक्ता संस्कृति, गैर-बराबरी आदि कई बड़े सवालों पर वह या तो चुप है या अस्पष्ट है। जाति और स्त्री-पुरुष विषमता के प्रमुख सवालों पर भी 'आप' के स्पष्ट बयान नहीं मिलते हैं।

ज्यादा खोजने व खोदने पर जवाब मिलता है कि हम व्यावहारिक और समाधान-केंद्रित (सोल्यूशन फोकस्ड)हैं। हम किसी विचारधारा से बंधने के बजाय मौके पर मामले के गुण-दोष के आधार पर फैसला लेंगे। दूसरा जवाब मिलता है कि लोग तय करेंगे। यह सही है कि अंतत: एक लोकतंत्र में अंतिम फैसला जनता ही करेगी। लेकिन यह तभी होगा जब जनता के सामने मुद्दों, मसलों और सवालों को स्पष्ट रूप से रखा जाए। स्थानीय लोग किसी खास परियोजना के बारे में अपनी राय दे सकते हैं। लेकिन उन परियोजनाओं के पीछे की सोच, नीति और साजिशों को कौन जनता के बीच लाएगा ? नीतिगत फैसले कैसे होंगे ? प्राथमिकताएं कैसे तय होंगी ? यह काम एक राजनैतिक दल का है। देश के मौजूदा राजनैतिक दल इस काम को जानबूझकर नहीं कर रहे हैं, ताकि वे सत्ता में आने पर सुविधानुसार और स्वार्थानुसार काम कर सकें। क्या 'आप' भी इस दायित्व से मुंह मोड़ रही है ?

यह कहा जा सकता है कि 'आप' अभी आकार ले रही है और इन सवालों पर धीरे-धीरे उसकी सोच साफ होगी। लेकिन जो पारटी देश के एक प्रांत में सरकार बनाने के लिए पूरी ताकत से चुनाव लड़ चुकी है और चंद महीनों के अंदर पूरे देश की सरकार बनाने के लिए मैदान में उतरने का ऐलान कर चुकी है, उसकी वैचारिक सफाई कब होगी? कहीं ऐसा तो नहीं कि यह वैचारिक अस्पष्टता जानबूझकर रखी गई है, ताकि किसी भी तबके को नाराज न किया जाए और सबका समर्थन व सहयोग मिलता रहे? यदि यह सही है तो यह दुविधा आगे भी बनी रहेगी और 'आप' के लिए एक रुकावट और सीमा बन जाएगी।

विचारधारा की जरूरत को ही नकारना इन दिनों एक फैशन बन गया है। जरूरी नहीं कि हम किसी पुरानी लीक पर चलें, अंधानुकरण करें और 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' में विश्वास करें। विचारधाराओं की समीक्षा हो सकती है और उनमें संशोधन हो सकते हैं। लेकिन समाज व देश-दुनिया के हालातों, घटनाओं, तनावों और टकरावों को ऐतिहासिक संदर्भ में समझना, विश्लेषण करना और उनके आधार पर उन्हें बदलने का लक्ष्य व रास्ता निर्धारित करना जरूरी है। इसी के

परस्पर सुसंगत वैचारिक फ्रेमवर्क को विचारधारा कहा जाता है। इसके हर ब्यौरे को आज तय करना जरूरी नहीं है, लेकिन मोटी समझ व दिशा तो साफ करना होगा। चालू राजनैतिक दल इसे स्पष्ट न करें तो समझ में आता है। लेकिन व्यवस्था परिवर्तन की बात करने वाले दल को तो इसे साफ करना ही होगा।

राजनीति में पैसे की पारदर्शिता का एक नया प्रतिमान 'आप' ने कायम किया है, जिसके लिए वह बधाई की पात्र है। लेकिन व्यवस्था में बदलाव की राजनीति के लिए विचारों की पारदर्शिता भी जरूरी है। और पैसे की पारदर्शिता की ही तरह यह काम सरकार में आने के बाद नहीं होगा। यह सफाई तो शुरु से होगी, तभी सत्ता के दबावों के आगे विचार टिक पाएंगे।

पिछले अनुभवों का सबक

भ्रष्टाचार के मुद्दे पर या जनांदोलनों के बाद सत्ता परिवर्तन भारत में पहले भी हुए हैं। बोफोर्स घोटाले के मुद्दे पर 1989 में विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार बनी, असम आंदोलन के बाद असम गण परिषद की सरकार बनी या 1977 में काफी बड़े जन उभार के साथ सत्ता परिवर्तन हुआ। लेकिन हर बार जनता को निराशा हाथ लगी क्योंकि नीतियों और ढांचों में कोई बदलाव नहीं हुआ और जनता पारटी की सरकार बनी। देश आजाद होने के बाद नेहरु के नेतृत्व में जो कांग्रेस सरकारें बनी, उनमें भी ज्यादातर लोग ईमानदार थे और आजादी के संघर्ष से निकले तपे-तपाए लोग थे। लेकिन गुलामी के दिनों के ढांचों को बदलने की इच्छाशक्ति के अभाव और गलत विकास नीति ने धीरे-धीरे देश को आज के हाल में पहुंचा दिया। क्या इन अनुभवों से हम कोई सबक नहीं लेंगे?

दुनिया के स्तर पर देखें तो बांग्लादेश या दक्षिण अफ्रीका जैसे कई देशों में शानदार मुक्ति संग्राम या लोकतांत्रिक क्रांतियां तो हुईं, लेकिन आर्थिक-सामाजिक-प्रशासनिक ढांचे न बदलने तथा वैश्वीकरण के जाल में फंसने के कारण वहां हालत खराब है और लोगों को निराशा हाथ लगी है।

पूंजीवाद के उदय के पहले शायद दुनिया में आर्थिक कारण इतने महत्वपूर्ण नहीं थे। लेकिन पूंजीवाद के आगमन के साथ ही मानव समाज में आर्थिक संबंधों, आर्थिक ताकतों और बाजार का वर्चस्व हो गया है और वे मानव समाज के हर पहलू को नियंत्रित या प्रभावित करने लगे हैं। वैश्वीकरण के ताजे दौर में यह नियंत्रण एवं वर्चस्व और बढ़ा है। इसलिए मानव समाज को बेहतर और सुंदर बनाने की हर कोशिश को इनकी एक समझ तथा इनके समीकरण को बदलने की रणनीति बनानी ही होगी और विकल्प की एक तस्वीर पेश करनी होगी।

विचारधाराओं की समीक्षा हो सकती है और उनमें संशोधन हो सकते हैं। लेकिन समाज व देश-दुनिया के हालातों, घटनाओं, तनावों और टकरावों को ऐतिहासिक संदर्भ में समझना, विश्लेषण करना और उनके आधार पर उन्हें बदलने का लक्ष्य व रास्ता निर्धारित करना जरुरी है। इसी के परस्पर सुसंगत वैचारिक फ्रेमवर्क को विचारधारा कहा जाता है। इसके हर ब्यौरे को आज तय करना जरुरी नहीं है, लेकिन मोटी समझ व दिशा तो साफ करना होगा। चालू राजनैतिक दल इसे स्पष्ट न करें तो समझ में आता है। लेकिन व्यवस्था परिवर्तन की बात करने वाले दल को तो इसे साफ करना ही होगा।

फिर आर्थिक ढांचा बदलना काफी नहीं है, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक और लोकतांत्रिक ढांचों, विकास की अवधारणा तथा जीवन-मूल्यों को भी बदलना होगा। इसी को गांधी 'स्वराज', लोहिया 'सप्तक्रांति' और जेपी 'संपूर्ण क्रांति' कहते थे। इसी में अनुभव से निकली यह बात निहित है कि व्यवस्था इतनी सड़ चुकी है कि छोटे-मोटे सुधारों से काम नहीं चलेगा। इसके लिए क्रांतिकारी बदलावों की जरूरत होगी।

यदि इस नए प्रयोग से भी एक मध्यम-मार्गी पारटी ही निकली तो यह ऊर्जा बेकार चली जाएगी, यह मौका चूक जाएगा और एक बार फिर निराशा हाथ लगेगी। उम्मीद है कि 'आप' के कर्णधार इस खतरे को समझेंगे। लेकिन यह जिम्मेदारी देश के बाकी जागरूक समूहों, संगठनों और बुद्धिजीवियों की भी है कि देश में वैचारिक मंथन और बदलाव की लड़ाई साथ-साथ चले तथा वैकल्पिक राजनीति का विकास वैकल्पिक दृष्टि और दिशा के साथ हो। **सुनील**

बदबू देती फेस्टिवल की संस्कृति

कंपनियों का पैसा, अय्याशी और बौद्धिक पाखंड इनकी विशेषता है

तरुण तेजपाल द्वारा तहलका की एक पत्रकार के साथ यौन दुराचार के मामले को मीडिया ने खूब उछाला। शायद कुछ ज्यादा ही कि इसमें दो मसले दब गए। एक तो उसी के ठीक पहले नरेंद्र मोदी द्वारा एक महिला की जासूसी करवाने का मामला सामने आया था। दूसरा, बहुत कम समाचार माध्यमों और पत्रिकाओं ने गोवा में आयोजित उस फेस्टिवल के चरित्र व स्वरूप की चरचा की, जिसके दौरान यह घटना हुई थी।

'थिंकफेस्ट 2013' नामक इस उत्सव का आयोजन गोवा में 4 से 6 नवंबर तक किया गया था। यह उत्सव 2011 से शुरु हुआ है। आम धारणा यह है कि इसका आयोजन 'तहलका' पत्रिका द्वारा किया जाता है। तहलका से इसका गहरा जुड़ाव है, लेकिन तथ्य यह है कि इसके आयोजन के लिए फरवरी 2010 में 'थिंकवर्क्स प्राइवेट लिमिटेड' नामक एक कंपनी का गठन किया गया था। इसके 80 फीसदी मालिक तरुण तेजपाल है, 10 फीसदी शेयर तरुण की बहन नीना तेजपाल के पास हैं और 10 फीसदी तहलका की प्रबंधक संपादक शोमा चौधरी के पास हैं।

करोड़ों रुपए के इस आयोजन में बड़ी-बड़ी कंपनियों की खूब स्पांसरशिप मिलती है और यह भी एक भारी आमदनी का जरिया बन जाता है। इस वर्ष थिंकपेस्ट को 34 कंपनियों से 17 करोड़ रुपए की स्पांसरशिप मिली। न्यूजवीक पत्रिका के साथ मिलकर आयोजित इस कार्यक्रम की मुख्य स्पांसर उद्योगपति रुइया की एस्सार कंपनी थी।

अदानी, शिवास (व्हिस्की बनाने वाली कंपनी), जेएसडब्ल्यू और वेव कंपनियों को सहयोगी स्पांसर माना गया। एयरटेल कंपनी ने भी काफी पैसा दिया होगा, इसलिए इसे 'एयरटेल थिंकफेस्ट 2013' कहा गया। उत्सव में हर जगह पृष्ठभूमि में कंपनियों के ब्रांड नाम और चिन्ह छाए रहते हैं और ये टीवी के परदों पर दिखाई देते हैं तो कंपनियों का विज्ञापन होता है।

इस आयोजन के लिए गोवा की भाजपा सरकार ने भी 50 लाख रु. दिए थे। आयोजन की चरचा करने जब नीना तेजपाल आई थी, तो उसके साथ बैठक में गोवा के भाजपाई मुख्यमंत्री, मुख्य सचिव, पर्यटन सचिव और अन्य बड़े अफसर मौजूद थे। माना यह जाता है कि गोवा सरकार की दिलचस्पी यह भी थी कि इससे गोवा में अवैध खनन पर से ध्यान बंटे, मीडिया में प्रतिकूल रिपोर्टिंग बंद हो और खदानें चालू करने में मदद मिले। आरोप तो यह भी है कि इस आयोजन के लिए गोवा की खनन कंपनियों से भी पैसा लिया गया, लेकिन आयोजकों ने इससे इंकार किया है। इसी तरह का विवाद 2011 में उठा था जब तहलका ने अपने एक संवाददाता रमन कृपाल को हटा दिया था। उसने गोवा की ताकतवर खनन लॉबी पर रपट बनाई थी।

गोवा के स्थानीय लोग इस आयोजन का विरोध करते रहे हैं। इस वर्ष आयोजन के पहले 'गोअन सोसायटी' ने इसके विरोध में प्रदर्शन किया था और इसे 'स्टिंकफेस्ट' (बदबू देता उत्सव) बताया था। उनका कहना था कि इसे बदनाम कंपनियां स्पांसर करती हैं और अपने असली इरादों को ढकने के लिए आयोजक अन्ना हजारे, मेधा पाटकर जैसे लोगों को बुलाते हैं। गोवा के प्रसिद्ध पर्यावरणविद और लेखक क्लाड अल्वारेस ने एक बार ऐसे आयोजनों के बारे में कहा था,

''बाहरी लोगों ने हम गोवावासियों का जीना हराम कर दिया है। हमारे समुद्र तटों को बरबाद कर दिया और सबने हमारी संस्कृति को तो जैसे बरबाद करने की ही ठान ली है। गोवा का आम आदमी इससे बहुत नाराज है।''

'थिंकफेस्ट' के आयोजकों ने इसे 'विचारों का उत्सव' कहा है। इसकी वेबसाइट पर कहा गया है कि यह दुनिया भर के विचारों का सबसे ज्यादा विविधतापूर्ण, विचारोत्तेजक और समतापूर्ण भारतीय मंच है। इसमें देश-विदेश से कई मशहूर बुद्धिजीवी,

कलाकार, लेखक व आंदोलनों के नेता भाग लेते हैं और स्वयं को धन्य मानते हैं। इस वर्ष के आयोजन के बारे में 8 नवंबर 2013 को अमिताभ बच्चन ने ट्विटर पर लिखा,

''तरुण तेजपाल का 'थिंक' एक ऐसा फोरम है जिसमें दुनिया के सबसे तेज दिमाग वाले भाग लेते हैं। सच में एक जोरदार आइडिया! शाबास तरुण!''

विडंबना देखिए कि इस वर्ष पहले दिन ही एक सत्र बलात्कार पीड़ितों की गाथाओं पर था और तीन बलात्कार पीड़ित महिलाओं को उसमें आमंत्रित किया गया था।

विलासिता, बौद्धिक पाखंड, शराब और फिजूलखर्च से भरपूर ऐसे आयोजनों का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। ये बहुत कुछ पश्चिम की नकल हैं। जयपुर में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाला साहित्य फेस्टिवल, जो इस साल आशीष नंदी की टिप्पणी के चलते विवादों में घिर गया था, भी इसी तरह कंपनियों के पैसे और भारी फिजूलखर्च के साथ होता है।

यह भी अंदाज लगाया जा सकता है कि क्यों खोजी पत्रकारिता के लिए मशहूर पत्रिका तहलका सांप्रदायिकता, नारी उत्पीड़न, भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों पर तो कड़े तेवर अपनाती है, लेकिन वैश्वीकरण, निजीकरण, कंपनियों की लूट आदि से जुड़े मसलों पर चुप रह जाती है।

अंत में, ऐसे आयोजन किस तरह की नैतिकता और संस्कृति को बढ़ावा दे रहे हैं, इसका अंदाजा 2011 के पहले आयोजन में तरुण तेजपाल के इस कथन से मिलता है। तरुण तेजपाल ने आगंतुकों से कहा,

''अब आप गोवा में हैं। जितना चाहें पीजिए। खाइए और चाहे जिस के साथ अच्छी तरह सोइए, पर सुबह जल्दी आने के लिए तैयार हो जाइए।''

तेजपाल की बेटी की उमर की सहेली, युवा पत्रकार ने शायद सोचा नहीं था कि वह खुद इस व्यभिचारी संस्कृति का शिकार बन जाएगी।

बाली में भारत ने पाया या गंवाया

देश की भोजन व्यवस्था में विदेशी हस्तक्षेप का मौका क्यों दिया जाए

इंडोनेशिया के बाली में मंत्रिस्तरीय बैठक से विश्व व्यापार संगठन (डब्लूटीओ) को संजीवनी मिली। अगर वहां समझौता नहीं होता, तो यह संगठन अप्रासंगिक होने के करीब था। दरअसल, जिस तरह पिछले 12 वर्षों से डब्लूटीओ के तहत दोहा दौर की वार्ता अटकी पड़ी थी, इसकी प्रासंगिकता पहले ही संदिग्ध हो चुकी थी। अब इस वार्ता को जीवनदान मिल चुका है। अब देखने की बात है कि भविष्य में इसका धनी, विकासशील और गरीब देशो के लिए क्या परिणाम सामने आता है।

बाली बैठक में भारत के लिए मुख्य मुद्दा खाद्य सब्सिडी का था। इस मुद्दे पर वह अपनी मुख्य मांग मनवाने में सफल रहा तो उसने तथा अन्य विकासशील देशों ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार को आसान बनाने के करार पर सहमति दे दी। व्यापार आसान बनाने का समझौता धनी देशों की प्राथमिकता थी, लेकिन भारतीय उद्योग और व्यापार की लॉबी भी इसके पक्ष में थी। नए समझौते के तहत सीमा-शुल्क में समरूपता आएगी, जिससे विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं का आयात-निर्यात आसान होगा। उद्योग एवं व्यापार जगत का कहना है कि इससे नियमों में स्थिरता, अंतरराष्ट्रीय कारोबार में सहजता एवं पारदर्शिता आएगी। इससे विश्व का सालाना सकल उत्पाद एक खरब डॉलर बढ़ने की आशा है।

इस समझौते पर राजी होने के लिए भारत ने शर्त लगाई थी कि खाद्य सब्सिडी आंकने के तरीके को नया रूप दिया जाए। जबकि धनी देश अड़े थे कि भारत चार साल की अंतरिम अवधि को स्वीकार कर ले, जिस दौरान उसके खिलाफ सब्सिडी की सीमा तोड़ने की शिकायत नहीं की जाएगी। उसके बाद पुराना फॉर्मूला लागू होगा, जिसके तहत खाद्य सब्सिडी को 1986-87 के मूल्यों के आधार पर आंका जाता है। नियम यह है कि किसी पैदावार की कुल मात्रा की कीमत के दस फीसदी से ज्यादा कोई देश किसानों को सब्सिडी नहीं दे सकता। अगर चार साल की अंतरिम अवधि की शर्त भारत मान लेता तो उसके

बाद भारत में खाद्य सुरक्षा कानून पर अमल असंभव हो जाता। इस कानून को लागू करने के लिए जितना अनाज सरकार को खरीदना होगा, उसकी कीमत दस फीसदी की सीमा निश्चित रूप से पार कर जाएगी। भारत का कहना था कि वह अंतरिम अवधि को इस शर्त पर स्वीकार करेगा कि इस दौरान पिछले ढाई दशक की मुद्रास्फीति को ध्यान में रखते हुए सब्सिडी आंकने का फॉर्मूला विकसित किया जाएगा।

इस मुद्दे पर भारत अपनी बात मनवाने में सफल रहा। इसके बावजूद उसने ऐसी कुछ शर्तों को स्वीकार कर लिया, जिनसे आशंका है कि भविष्य में भारतीय खाद्य सुरक्षा कानून के लिए कठिनाइयां खड़ी हो सकती हैं। इनमें एक यह है कि भारत को खाद्य सुरक्षा कानून की अंतरराष्ट्रीय जांच के लिए तैयार होना पड़ सकता है। इसके तहत कोई भी देश यह देखने की मांग कर सकता है कि भारत में किसी को गरीब मानने की क्या कसौटी अपनाई गई है, पोषण संबंधी क्या सहायता दी जा रही है और वह कितनी वाजिब है, और खाद्य एवं कृषि से संबंधित कितनी सब्सिडी भारत सरकार दे रही है।

किसान संगठनों की शिकायत है कि सब्सिडी सिर्फ उन फसलों के बारे में ही जारी रखने की छूट मिली है, जिन्हें पारंपरिक रूप से खाद्य सुरक्षा (यानी सार्वजनिक वितरण प्रणाली) के लिए सरकार खरीदती रही है। यानी दलहन, तिलहन आदि जैसी फसलें खाद्य सब्सिडी के दायरे से बाहर मानी जाएंगी। अगर सरकार इन पर सब्सिडी देती है और वह दस फीसदी की सीमा से बाहर जाता है तो कोई भी देश डब्लूटीओ में भारत की शिकायत कर सकता है। फिर भारत खाद्य का कितना भंडार रखता है, इस बारे में भी अंतरराष्ट्रीय जांच हो सकती है। इस अर्थ में भारत की खाद्य निर्णय संबंधी संप्रभुता से समझौता हुआ है।

बहरहाल, 159 देशों के बीच हुए बाली में हुए समझौते से अगर डब्लूटीओ की प्रक्रिया पटरी पर लौटती है तो इससे विभिन्न देशों के बीच दोतरफा या मुक्त व्यापार क्षेत्र समझौता करने की बढ़ी प्रवृत्ति रुकेगी। एक अनुमान के मुताबिक आज तकरीबन 60 फीसदी व्यापार डब्लूटीओ के दायरे से बाहर हो रहा है। डब्लूटीओ में मुमकिन है कि किसी एक देश की असहमति भी किसी समझौते को रोक सकती है। यानी सैद्धांतिक रूप से यहां गरीब और विकासशील देश अपनी साझा ताकत से बेहतर सौदेबाजी की स्थिति में रहते हैं। जबकि दोतरफा समझौतों में धनी देशों की दादागीरी के आगे उनकी लाचारी बढ़ जाती है। इस रूप में यह आकलन करना फिलहाल कठिन है कि बाली में भारत ने कुछ ठोस पाया, या ज्यादा गंवाया।

करजा लो और अय्याशी करो

विशाल करजे डकार कर भारतीय अमीर फिजूलखर्ची के रिकार्ड तोड़ रहे हैं

एक शादी इन दिनों चरचा में है। भारतीय लोग जैसे कई झूठी बातों पर गर्व करते हैं, वैसे चाहें तो इस पर भी फख्र कर सकते हैं। एक भारतीय उद्योगपति ने अपनी बेटी की शादी पर इतनी शानदार दावत दी कि यह दुनिया की दूसरी महंगी शादी बन गई है। प्रमोद मित्तल नामक इस उद्योगपति ने अपनी बेटी सृष्टि की शादी स्पेन के बार्सीलोना शहर में की जिस पर करीब 6 करोड़ यूरो यानी करीब 505 करोड़ रुपए खर्च हुए।

दुनिया की सबसे महंगी शादी का रिकार्ड 1981 में अबुधाबी के सुल्तान की 7.6 करोड़ यूरो की शादी का है। दूसरे नंबर पर 1981 में ही ब्रिटेन के राजकुमार चार्ल्स और डायना की बहुचर्चित शादी है जो 2004 में फ्रांस में हुई थी और जिस पर 4.6 करोड़ यूरो खर्च हुए थे। तीसरे नंबर पर प्रमोद मित्तल के ही बड़े भाई लक्ष्मी मित्तल की बेटी वनिषा की शादी है जो 2004 में फ्रांस में हुई थी और जिस पर 4.6 करोड़ यूरो खर्च हुए थे। अब प्रमोद मित्तल इस सूची में बाद के दोनों को नीचे धकाते हुए दूसरे स्थान पर पहुंच गए है। प्रमोद मित्तल ने इसके पहले 2011 में अपनी एक और बेटी वर्तिका की शादी तुर्की शहर इस्तंबुल में की थी और वह भी दुनिया की सबसे महंगी शादियों में से एक है।

मित्तल बंधु अंबानी बंधु की ही तरह दुनिया के सबसे बड़े अमीर लोगों में शामिल भारतीय हैं। बड़ा भाई लक्ष्मीनिवास मित्तल दुनिया के सबसे बड़े इस्पात उद्योग आर्सलर-मित्तल का मालिक है। दुनिया के सबसे बड़े अमीरों की जो सूची *फोर्ब्स* पत्रिका निकालती है, उसमें 2011 में लक्ष्मी मित्तल का स्थान छठा था, हालांकि नुकसान होने पर अगले साल वह 21 वें स्थान पर आ गया। लक्ष्मी मित्तल भी अपनी फिजूलखर्ची और शौकीन मिजाजी के लिए मशहूर है। 2004 में लंदन में उसने 12.8 करोड़ डालर (उस वक्त के करीब 600 करोड़ रु.) में एक कोठी खरीदी, जिसे दुनिया का सबसे महंगा घर निरूपित किया गया। चार साल बाद उसने अपनी बेटी वनिषा मित्तल को उसी इलाके में 700 करोड़ रु. से भी ज्यादा का घर खरीद कर दिया।

दुनिया के सबसे गरीब देशों में शुमार भारत के रईसों द्वारा इस तरह गुलछर्रे उड़ाना कोई नई बात नहीं है। नई बात है इसकी नई ऊंचाइयां और विकरालता। भारत में गैर बराबरी और अमीर-गरीब की खाई पिछले दो दशकों में जिस तेजी से बढ़ी है, उसका यह एक प्रतिबिंब है।

लेकिन केवल इतना कहने से तस्वीर अधूरी रह जाती है। किस्से का दूसरा पहलू है कि प्रमोद मित्तल भारत के सबसे बड़े कर्जदारों में से भी एक रहे हैं। अपने भाई विनोद मित्तल के साथ जिस 'इस्पात इंडस्ट्रीज' नामक भारत की प्रमुख इस्पात कंपनी के वे मालिक रहे, उसे भारत के बैंकों और वित्तीय संस्थाओं ने बार-बार विशाल करजे दिए, माफ किए या उनका नवीनीकरण किया। इसे सरकारी भाषा में 'कंपनी कर्ज पुनर्रचना' (कार्पोरेट डेब्ट रिस्ट्रक्चरिंग) कहा जाता है। इसके तहत कंपनी के ऊपर बकाया कर्ज का समायोजन कर नया कर्ज दे दिया जाता है। इसके बैंक को दो फायदे होते हैं। कंपनी दिवालिया होने से बच जाती है और बैंक की सालाना बेलेंस शीट में डूबत खाते में खराब कर्ज (एनपीए या नॉन परफार्मिंग एसेट) भी कम हो जाते हैं।

इस्पात इंडस्ट्रीज के ऊपर बैंकों व वित्तीय संस्थाओं का विशाल बकाया कर्ज था। 2003 और 2009 में उसके कर्जों का नवीनीकरण किया गया। 2006 में भी कोशिश की गई, लेकिन भारतीय रिजर्व बैंक ने बिना प्रबंधन बदले इसकी इजाजत नहीं दी। इसी वर्ष प्रमोद मित्तल ने 1.4 करोड़ यूरो (करीब 100 करोड़ रुपए)में बल्गारिया का एक फुटबाल क्लब खरीद लिया। इस्पात इंडस्ट्रीज की हालत खराब थी। मजदूरों-कर्मचारियों के वेतन देने के लिए पैसा नहीं था, बिजली-पानी के बिल भरने और कच्चा माल खरीदने के लिए भी पैसा नहीं था। लेकिन पूरे वक्त मालिक मित्तल बंधु गरम पानी के स्विमिंग पुल, छत पर हेलीपेड, विदेशों में घर और महंगी कारों पर अरबों रुपया लुटाते रहे। आखिरकार जब कर्जदाता बैंकों पर दबाव पड़ा और दिसंबर 2010 में इस्पात इंडस्ट्रीस का सज्जन जिंदल वाली कंपनी 'जिंदल स्टील वर्क्स' के साथ विलय हुआ, तब इस्पात इंडस्ट्रीज के ऊपर 15 कर्जदाता संस्थाओं का 7156 करोड़ रुपए का कर्ज था। इसमें 400 करोड़ रुपए का कर्ज डूबत खाते में था। कंपनी 323 करोड़ रुपए के घाटे में थी।

कुल मिलाकर, कंपनी कर्ज पुनर्रचना का कार्यक्रम भारत के संसाधनों की अमीरों व पूंजीपतियों द्वारा बेशरमी से लूट का एक जरिया बन गया है। अखिल भारतीय बैंक कर्मचारी संघ ने जानकारी दी है कि पिछले सात बरसों में इस योजना के तहत 495 हजार करोड़ के करजों को स्वीकृत किया गया है जिनमें 140 हजार करोड़ रु. के पुराने डूबे हुए करजों का समायोजन किया गया है। भारतीय बैंक के सबसे बड़े चार बकायादारों पर 23 हजार करोड़ रु. बकाया है।

एक तरफ देश के किसान या साधारण भारतीय समय पर अपना कर्ज न चुका पाए तो ये बैंक और राजस्व अधिकारी कुरकी-नीलामी करने पहुंच जाते हैं और कई तरह से उन्हें अपमानित करते हैं। कर्ज के ही चलते पिछले पंद्रह बरसों में दो लाख से ज्यादा स्वाभिमानी किसान खुदकुशी कर चुके हैं। दूसरी तरफ भारतीय पूंजीपतियों की नई पीढ़ी है, जो विशाल कर्जा लेकर अय्याशी के सारे रिकार्ड तोड़ रही है। वह 'ऋणम कृत्वा घृतम पिबेत' के दर्शन को विकराल स्तर पर भौंडी अश्लीलता, जबरदस्त बेशरमी और संवेदनशून्यता के साथ, देश के नीति-निर्धारकों के सहयोग से क्रियान्वित कर रही है। इन्हें देश का गौरव कहें या देश के नए लुटेरे ? नेताओं का भ्रष्टाचार तो हमें दिखता है, यह लूट कई बार छुपी रहती है। लेकिन पूंजीवाद के वैश्वीकरण वाले दौर की यह एक बड़ी सच्चाई है।

संस्कृति के सवाल

सच्चिदानंद सिन्हा

केवल कला, साहित्य, संगीत, नाटक और नाच ही नहीं, खेती करघा या हस्तशिल्प भी संस्कृति का हिस्सा है। जीवन-दृष्टि और समग्रता बोध से निकली विचारधारा इंसानी समाज का खास आयाम है। तर्क नहीं, अनुभूति ने इंसान को इंसान बनाया है। सारे स्तनपायी जीवों में मादा बुद्धि में श्रेष्ठ होती है, लेकिन पुरुषों ने शारीरिक शक्ति के बल पर उसे दबाना चाहा है। एक नई संस्कृति ही इन हालातों को बदल सकती है।

संस्कृति को कला, साहित्य, नाट्य, नृत्य एवं संगीत आदि की अभिव्यक्ति के रूप में सीमित करने का रुझान अभी भी बरकरार है। संस्कृति को मनुष्य के सर्वांगीण विकास के कारण के रूप में देखने का प्रयास होना चाहिए। इस दृष्टि से किसान का कृषि कर्म या करघा पर एवं कारखाने में काम करने वाले मजदूरों का निर्माण कार्य उतना ही सांस्कृतिक है, जितना कवि की कविता या गायक का संगीत है। पुरानी दृष्टि के रूढ़ होने का एक और भी कारण हो सकता है। कवि अथवा कलाकार सदा एक सम्मानित समूह रहा है और वर्ग विभाजित समाज में एक श्रमिक के रूप में चिन्हित होना रुचिकर नहीं होता। हालांकि जब हम हस्तशिल्प की दुनिया में आते हैं तब यह फर्क कर पाना मुश्किल है कि शिल्पकार की कृति कितनी आवश्यकता पूर्ति का साधन है और कितनी कला। प्राचीन यूनान की कलाओं या मधुबनी चित्रकला को हम किस कोटि में रखेंगे?

अगर हम इस भेद को हटा दें तो शायद एक ऐसे भविष्य की कल्पना भी हो सकती है जिसमें आवश्यकताओं की पूर्ति के सारे कार्यकलाप कला का रूप धारण कर लें। आज ही उत्पादन प्रक्रिया में पर्यावरण के क्षय से मानव जीवन की सुरक्षा के लिए उद्योगों के विकास को कुछ वैसी ही दिशा देना जरूरी लगता है, जहां आदमी हस्तकला का केंद्रीय स्थान ग्रहण कर ले और हर तरह का निर्माण कार्य कलाकर्म बन जाए। बर्तानी कवि-कलाकार समाजवादी विलियम मॉरिस की कला संबंधी कुछ ऐसी ही कल्पना थी जो औद्योगिक क्रांति के बाद के उद्यमों में श्रम के बेगानेपन की समस्या से रूबरू होने से उपजी थी। दिलचस्प है कि मॉरिस भी महात्मा गांधी की तरह जॉन रस्किन के विचारों से प्रभावित थे। यह भी जानना दिलचस्प है 1843 और 1847 के बीच कार्ल मार्क्स ने अपने लेखों में जो दार्शनिक उड़ानें भरी थीं उसमें तत्कालीन श्रम विभाजन को भी मानव के व्यक्तित्व को खंडित करने वाले कारक की तरह चिन्हित किया था। शायद वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था में निहित मनुष्य के विखंडन से मार्क्स भी काफी व्यथित होते और इस आधार पर भी वर्तमान समाज व्यवस्था को अस्वीकार्य मानते।

इंसान की जीवन दृष्टि

शिल्प और औद्योगिक उत्पादन जिसमें भोजन, वस्त्र, आवास आदि सभी का उत्पादन शामिल हैं के बीच की दरार का एक आयाम यह भी है कि उत्पादन प्रक्रिया स्वयं खंडित है, जिसमें मजदूर अलग-अलग उत्पादक वस्तुओं के अलग-अलग हिस्से का ही उत्पादन करता है और इसमें उसकी जीवन दृष्टि भी खंडित हो जाती है या जीवन दृष्टि की शून्यता पैदा होती है। यह सर्वहारापन की स्थिति संपत्तिहीनता से कहीं अधिक विपन्न करने वाली होती है क्योंकि इसमें उसकी मनुष्यता का लोप हो जाता है। मनुष्य की मनुष्यता का सब से विशिष्ट आयाम यह है कि उसकी एक जीवन दृष्टि होती है। वह जो भी करता है एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उसका न सिर्फ

लेखक की पुस्तक संस्कृति विमर्श के शीघ्र प्रकाश्य दूसरे संस्करण की प्रस्तावना के अंश।

सच्चिदानंद सिन्हा मूर्धन्य समाजवादी चिंतक हैं। हिंदी और अंगरेजी में कई पुस्तकों के लेखक हैं।
पताः ग्राम/पोस्ट मनिका, जिला मुजफ्फरपुर, बिहार

एक भौगोलिक बल्कि नैतिक और ललित आयाम भी होता है। आदिम कबीलों से लेकर आधुनिक औद्योगीकरण के पहले तक के सभी समाजों में आदमी की एक जीवन दृष्टि होती रही है। संसार की समग्रता के बोध से आदमी स्वयं को इस संसार के एक आवश्यक हिस्से के रूप में देखता रहा है।

आधुनिक प्रचलन के हिसाब से समग्रता बोध को हम मनुष्य की विचारधारा कह सकते हैं। प्रत्येक समाज की एक विचारधारा होती थी। व्यक्तियों की विचारधाराएं अपने समाज की विचारधारा में समाहित होती थी। जैसे हर व्यक्ति का इंद्रधनुष अलग-अलग और अपना होता है क्योंकि इन में प्रत्येक अलग-अलग बूंदों से प्रत्यावर्तित प्रकाश से ही इसे देखता है वैसे ही वैयक्तिक भिन्नताओं के बावजूद आदिम समाजों से लेकर आधुनिक समाजों तक में भी विश्वदृष्टि की सामूहिकता भी सदा रही है।

वर्तमान समाज में पहली दफे एक विखंडन दिखाई देता है, जिसमें मनुष्यों के सारे अनुभवों को समेट कर किसी आख्यान के तहत लाने के प्रयास को हास्यास्पद माना जाने लगा है - मसलन तथाकथित उत्तर आधुनिकता के विचार में। इस दृष्टि से मानव अस्तित्व स्वयं अर्थहीन बन जाता है। एक आत्यांतिक अर्थ में इस दृष्टि को बिल्कुल नकारा नहीं जा सकता। कहीं कोई मानवेतर चेतना का ऐसा केंद्र नहीं जो हमें कहे कि हमारे अस्तित्व का पड़ोस में पड़े किसी पत्थर के टुकड़े से अधिक अर्थ है। लेकिन मनुष्य की जीवन दृष्टि ही अपनी केंद्रीयता से, चाहे वह धर्मदर्शन या किसी दूसरे आख्यान से आए, हमें जीवित रहने का हौसला देती है।

मनुष्य की मनुष्यता का सब से विशिष्ट आयाम यह है कि उसकी एक जीवन दृष्टि होती है। वह जो भी करता है एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उसका न सिर्फ एक भौगोलिक बल्कि नैतिक और ललित आयाम भी होता है।

पूरे जीव जगत में एक जिजीविषा व्याप्त है, जो जीवों की आनुवंशिकी से आती है। मनुष्य में उसकी संस्कृति में इसकी उपस्थिति एक पूरक शक्ति के रूप में मिलती है। अगर संस्कृति में इस पूरक शक्ति का अभाव हो जाए तो व्यक्तिगत या सामूहिक आत्महत्या का रुझान पैदा होगा। अस्तित्ववादी दर्शन में, विशेष कर आल्बेयर कामू में 'एबसर्ड' की एक भावना और आत्महत्या को संबद्ध मानने का रुझान मिलता है। इस दृष्टि से विचारधारा की विशेष भूमिका मानव अस्तित्व के लिए हो जाती है। इस अर्थ में मानव संस्कृति जो विचारधारा की वाहक भी है जिजीविषा का एक अतिरिक्त स्रोत बन जाती है। यह अनुभूति ललित कलाओं से परे जा संस्कृति को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करने की मांग करती है।

तर्क नहीं, अनुभूति

ऊपर जिजीविषा की बात की गई है। लेकिन यह जिजीविषा हमारे लिए सबसे बड़ी पहेली है। एक अति सूक्ष्म कीटाणु से लेकर पूर्ण विकसित मनुष्य तक में जीवन को बचाए रखने का दबाव कहां से आता है? सभी स्तर पर जीवित प्राणी के कार्यकलाप या प्राणियों की प्रजातियों का विकास जीवन पर बाह्य स्थिति के दबाव (चाहे वे आनुवंशिक हों या संस्कृति-जनित) के प्रतिउत्तर (रेस्पांस) के रूप में आते रहे हैं। जीवों में इस अनुभूति का स्रोत क्या है? यह फिर हमें हजारों वर्षों से अनुत्तरित समस्या ''जीवन क्या है'' से रूबरू कर देती है। ये चेतना या इसकी अनुभूति मनुष्य की तर्कबुद्धि से भिन्न है। विख्यात दार्शनिक एवं गणितज्ञ रेने देकार्त (1596-1650) इस पहेली पर विचार करते हुए और सभी मान्यताओं पर संशय व्यक्त करते हुए इस नतीजे पर पहुंचे ''मैं सोचता हूं इसलिए मैं हूं।'' यह एक तर्कशास्त्री और गणितज्ञ का उत्तर हो सकता है। लेकिन मूल प्रश्न से यह भी किनाराकशी कर लेता है। सोचना एवं गणितीय ज्ञान एक तार्किक प्रक्रिया है और एक अतिविकसित कम्प्यूटर भी बाहरी समस्याओं से सामना होने पर उस पर पूर्ण तार्किकता से विचार कर सकता है। लेकिन चेतना का मूल तार्किकता में नहीं है, बल्कि अनुभूति में है। दरअसल देकार्त को कहना यह चाहिए था कि ''मैं अनुभव करता हूं और इसलिए मैं हूं।'' इस में एक कोशीय जीव से लेकर अति विकसित मनुष्य तक सभी प्रजातियों में जीवन के अस्तित्व की मूल अभिव्यक्ति हो जाती है।

यह तर्कशक्ति नहीं अनुभूति का गुण है जो जीवन जगत को संसार की सभी सरल और जटिल वस्तुओं से अलग कोटि में डाल देता है। देकार्त ने चैतन्य मनुष्य के अस्तित्व को अनुभूति की बजाए मनुष्य की सोचने की शक्ति या तर्क बुद्धि से जोड़ा। इससे वह संसार को दो खंडों में बांटने को विवश हुआ- एक तरफ मशीन की तरह कार्यशील आदमी का शरीर और दूसरी ओर चैतन्य आत्मा। इन दो अस्तित्वों को जोड़ने वाला कोई पुल नहीं था, क्योंकि जड़ और चेतन बिल्कुल भिन्न अस्तित्व थे, जिन्हें जोड़ने वाला कोई समान तत्व नहीं था। इस तरह हम मशीन में बैठे हुए देव की कल्पना पर पहुंच गए। देकार्त के अनुसार पिनियल ग्लैंड में उपस्थित यह देव सारे मशीन के कार्य कलाप को प्रभावित करता है। वास्तव में यह कोई समाधान था नहीं। जड़ और चेतन के बीच संवाद का क्या सूत्र है, यह अज्ञात रहा। सुखद और दु:खद अनुभूतियों से युक्त जीवन का विकास कैसे हुआ, यह अब तक अनुत्तरित प्रश्न है। क्या फैलाव (एक्सटेंशन) एवं भार (मास) की तरह पदार्थ में चेतना का गुण भी एक स्थूल और अव्यक्त रूप में अनिवार्य उपस्थिति है जो पदार्थ के अति जटिल विकास मसलन सरल एक कोशीय जीवन के डीएनए के विकास के साथ व्यक्त होता है?

जो भी हो, इस बात की चर्चा इसलिए कर देना जरूरी लगता है क्योंकि जीवन रक्षा के लिए एवं उनके विविध गुणों के विकास के लिए सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव में भी सुखद और दु:खद या जीवन रक्षक और मारक स्थितियों के फर्क की पहचान की चेतना या वेदना जरूरी थी। इसके बगैर जीवन निश्चेष्ट रह एवं मारक स्थितियों को कबूल कर अपने अस्तित्व को मिटा देता। जीवन और संस्कृति के विकास के लिए यह अनुभूति एक अनिवार्य शर्त थी जिसमें कुछ स्थितियों के स्वागत और कुछ के निवारण का अंतरभूत रुझान होता।

मादा की श्रेष्ठता

एक दूसरा प्रश्न नर-नारी संबंध का है, जिस पर संस्कृति के संदर्भ में कुछ बुनियादी समझ विकसित करना जरूरी लगता है। यह समझना मुश्किल लगता है कि जीवन बनाए रखने में एक-दूसरे पर पूरी तरह निर्भर पुरुष और स्त्रियों के संबंध में आक्रामकता और हिंसा की स्थितियां क्यों लगातार बनती रहती हैं। हमें इस प्रश्न से जूझना ही होगा क्योंकि यह संबंध संस्कृति का वृहद हिस्सा है।

चूहे से लेकर मनुष्य के सबसे करीबी जीव चिंपाजी और फिर मनुष्य तक सभी स्तनपायी प्रजातियों में बच्चों का पोषण और भोजन प्राप्त करने तथा सुरक्षा का उनका प्रशिक्षण लगभग पूरी तरह प्रजाति की मादा पर निर्भर करता है। विकास के संदर्भ में इसका अनिवार्य पक्ष यह है कि मादाओं में मस्तिष्क का विकास नर से अधिक होगा। उनमें बुद्धि, अध्यव्यवसाय और स्थितियों के आकलन की क्षमता नर से ज्यादा होगी क्योंकि संतान का जीवन इन गुणों पर पूरी तरह निर्भर है। उन में बर्दाश्त करने का गुण भी अधिक होगा ताकि कठिनाइयां झेल कर भी संतान की रक्षा करें। इसका अर्थ है कि सामान्यतः मादाएं बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ होंगी।

अगर हम विभिन्न स्तनपायी जीवों से मनुष्यों की तुलना करें तो स्थिति को समझने में कुछ सहायता मिलेगी। चूहे से लेकर मनुष्य के सबसे करीबी जीव चिंपाजी और फिर मनुष्य तक सभी स्तनपायी प्रजातियों में बच्चों का पोषण और भोजन प्राप्त करने तथा सुरक्षा का उनका प्रशिक्षण लगभग पूरी तरह प्रजाति की मादा पर निर्भर करता है। विकास के संदर्भ में इसका अनिवार्य पक्ष यह है कि मादाओं में मस्तिष्क का विकास नर से अधिक होगा। उनमें बुद्धि, अध्यव्यवसाय और स्थितियों के आकलन की क्षमता नर से ज्यादा होगी क्योंकि संतान का जीवन इन गुणों पर पूरी तरह निर्भर है। उन में बर्दाश्त करने का गुण भी अधिक होगा ताकि कठिनाइयां झेल कर भी संतान की रक्षा करें। यह बात शेर, चिंपाजी और दूसरे स्तनपायी जीवों के व्यवहार में भी दिखाई देती हैं। इसका अर्थ है कि सामान्यत: मादाएं बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ होंगी।

दूसरी ओर सामूहिक जीवन होने से बच्चों के रख-रखाव से मुक्त नर पर ही दूसरे जीवों और स्वयं अपनी प्रजाति के दूसरे समूहों से रक्षा की जवाबदेही

मूलत: रही है। इससे डील-डौल और शारीरिक शक्ति का विकास मर्दों में अधिक हुआ। यह बात ओलंपिक खेलों में औरत एवं मर्द प्रतिभागियों के शारीरिक डील-डौल और उपलब्धियों के आंकड़ों में साफ दिखाई देती है। संभवत: शारीरिक शक्ति की इस श्रेष्ठता का फायदा उठा मर्दों ने पूरे समाज पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया और अनेक जगह औरतों को घरों में बंद कर दिया। कहा जा सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी अब तक कुल मिलाकर मर्दों का स्कोर अधिक रहा है। इसका एकमात्र कारण यह दिखाई देता है कि प्रतिस्पर्धा की स्थितियां अब तक समान नहीं रही हैं। जहां स्थितियां समान रहती हैं, वहां प्राय: औरतों का प्रदर्शन बेहतर होता है। हाल के स्कूल और कॉलेजों की परीक्षा के नतीजे यही बताते हैं। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि पढ़ने-लिखने वाली लड़कियों को प्राय: वैसे घरेलू कामों में भी हाथ बंटाना होता है, जिससे लड़के आजाद होते हैं।

शारीरिक बल की प्रधानता राज्य व्यवस्था में भी प्रतिबिंबित होती है क्योंकि राज्य व्यवस्था अंतत: बल के बूते राज्याज्ञा को आरोपित करने का ही माध्यम है और पशुबल का प्रतीक है। संस्थाओं और कार्यालयों में महिलाओं को, संस्थागत वर्चस्व के साथ-साथ अगर बॉस पुरुष है, तो पुरुषत्व का दबाव भी झेलना पड़ता है। इस स्थिति से निजात संस्कृति के भीतर लोगों की दृष्टि में इस मूलभूत बदलाव से ही मिल सकती है कि पुरुष औरतों की समग्र श्रेष्ठता को कबूल करें और यह मानकर चलें कि किसी क्षेत्र में मर्द की श्रेष्ठता अपवाद है, नियम नहीं।

समाज में बल प्रयोग का दायरा जैसे-जैसे घटेगा औरतों की स्थिति और औरत-मर्द संबंधों में बुनियादी बदलाव आएगा। लेकिन यह एक लंबी प्रक्रिया हो सकती है। औरतों की स्वाभाविक श्रेष्ठता को कबूल कर लेने पर यह दृष्टि जल्दी ही फैलेगी, यह आशा की जा सकती है। अभी तक तो यही हो रहा है कि उत्पादन और समाज व्यवस्था दोनों में विशाल संगठनों और नौकरशाही का विस्तार हो रहा है और इनमें वर्चस्व स्थापित करने की प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है। इसमें मर्दानगी स्थापित करने का रुझान भी बढ़ रहा है। धीरे-धीरे वैयक्तिक और पारिवारिक संबंध कमजोर पड़ रहा है और संस्थाजन्य संबंध हावी हो रहा है- इसमें वर्चस्व का प्रतीक मर्दानगी बन रही है।

पुरानी कविता की यह पंक्ति ''क्या खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झांसी वाली रानी थी'' इसी संदर्भ में समझी जा सकती है। इसका संस्थागत रूप फौज में औरतों की बढ़ती संख्या और आत्मघाती आतंकवादी दस्तों में औरतों की बढ़ती भागीदारी है। यह जीवन देने वाली, पालन-पोषण करने वाली ममतामयी माता की तस्वीर को नष्ट करने वाली प्रक्रिया है। यह महिलाओं द्वारा पुरुष के आक्रामक रूप को आत्मसात करना है। यह भावनात्मक स्तर पर हिंसक और आक्रामक मर्द की प्रतीकात्मक स्थापना है। एक तरह से वर्तमान समाज के आक्रामक तेवर को उन बचे हुए स्थानों में स्थापित करने का प्रयास है जहां मां की ममता और परोपकार जैसे भाव स्थापित थे। जब नर-नारी संबंध अमूर्त हिंसा की तस्वीर में बदल जाएगा, तो दोनों के संबंध कानूनी और अदालती होंगे और माधुर्य की भावना का लोप हो जाएगा।

वार्ता के लिए लिखें

सामायिक वार्ता के लिए लेख, अन्य भाषाओं के महत्वपूर्ण लेखों के अनुवाद, साक्षात्कार, रपट, गतिविधियों के सामाचार और टिप्पणियां आमंत्रित हैं। लेख और रपट वार्ता के मिजाज के अनुकूल हों तो बेहतर होगा।

वार्ता में प्रकाशित सामग्री पर आपकी प्रतिक्रिया, टिप्पणियों और पत्रों का भी हमें इंतजार रहेगा। भाषा, टायपिंग और प्रूफ की गलतियों की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करें तो हमें मदद मिलेगी।

बरबादी की बाढ़, समझ का अकाल

अनुपम मिश्र

हमने लगातार लोगों के पारंपरिक ज्ञान और दर्शन की अवहेलना की है तथा ऊपर से विकास की अवधारणा और योजनाओं को बिना विचारे थोपा है। तीन रोचक प्रसंगों के माध्यम से इस सच्चाई को स्पष्ट करता वक्तव्य।

दिल्ली में आकाशवाणी द्वारा आयोजित डा. राजेन्द्र प्रसाद स्मारक व्याख्यान 2013 के चुने हुए अंश।

विकास और पर्यावरण की देशी समझ के प्रचारक अनुपम मिश्र की छोटी-बड़ी 20 पुस्तकें वन, भूमि, बाढ़, अकाल आदि पर प्रकाशित हुई है। 'गांधीमार्ग' के संपादक।

पताः गांधी शांति प्रतिष्ठान, 223, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002
फोनः 110-23237491
gmhindi@gmail.com

यह प्रसंग करीब 93 बरस पहले का है, जिसका जिक्र भारत के पहले राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू ने किया है।

अश्विन के महीने में बिहार के छपरा जिले के एक दिन घनघोर बरसात हुई। चौबीस घंटों में लगभग छत्तीस इंच वर्षा हुई, नतीजा यह हुआ कि पूरा जिला भयानक बाढ़ में डूब गया। वहां के सरकारी कर्मचारियों ने लोगों की इस मुसीबत में बहुत ही उदासीनता और उपेक्षा का भाव दिखाया। उन दिनों छपरा से मशरक तक जाने वाली रेल लाइन के कारण बाढ़ का सारा पानी आगे बहने के बदले एक बड़े भाग में फैल गया था और पीछे से आने वाली विशाल धारा उसका स्तर लगातार उठाते जा रही थी। लोगों को इससे बचने का एक ही रास्ता दिखा था, रेलवे लाइन काट देना और चढ़ते पानी को आगे के भूभाग में फैलने देना ताकि यहां कुछ सांस ली जा सके। पर कलेक्टर ने उनकी एक न सुनी। और तो और ऐसी ही तबाही मचा रही अन्य रेलवे लाइनों पर सशस्त्र पहरा बिठा दिया गया था। सीवान के पास एक ऐसी ही जगह बहुत पानी जमा हो गया था। गांव वालों ने तब खुद ही उस रेल लाइन को काटना तय कर लिया। पर सामने सशस्त्र पुलिस देख उनकी हिम्मत न पड़ी।

राजेंद्र बाबू इसका वर्णन करते हुए लिखते हैं: ''कष्ट सहते गए लोग। पर जब वह बर्दाश्त से बाहर हो गया तो दो-चार आदमी कंधे पर कुदाल रखकर पानी में तैरते हुए रेल लाइन की तरफ बढ़े। पुलिस ने उन्हें देखा और उनको धमकाया। उन्होंने जवाब दिया कि पानी में डूब कर तो हम मर ही रहे हैं और तुम लाइन नहीं काटने देते। अब तक हमने बर्दाश्त किया। अब और बर्दाश्त नहीं कर सकते। मरना दोनों हालत में है। डूब कर मरें या गोली खाकर मरें। हमने निश्चय कर लिया है कि गोली खाकर मरना बेहतर है। हम लाइन काटेंगे, तुम गोली मारो।''

बहते पानी में ये बहादुर लोग तैरते हुए मजबूत बांध की तरह उठी हुई उस रेल लाइन पर अपने दृढ़-निश्चय से कुदाल चलाते गए। पुलिस की हिम्मत नहीं हुई गोली चलाने की। लाइन अभी थोड़ी-सी ही कट पाई थी कि पीछे भर रहे पानी की ताकत ने लोगों के संकल्प में साथ दिया और लाइन भड़ाक से टूटी और विशाल बाढ़ का पानी उसे किसी तिनके की तरह अपने साथ न जाने कहां बहा ले गया। पीछे के अनेक गांव पूरी तरह डूबने से बच गए थे। बाद में पुलिस वालों ने भी रिपोर्ट में लिखा कि बाढ़ के दबाव से ही रेल लाइन कट गई थी।

इन सब दुखद प्रसंगों से राजेंद्र बाबू ने देखा था कि बाढ़ और साथ ही अकाल अकेले नहीं आते। इनसे पहले समाज में और भी बहुत कुछ ऐसा होता है जो होना नहीं चाहिए। यह सब कभी धीरे-धीरे, तो कभी बड़ी तेजी से होता है। गति जो भी हो, समाज के नीति निर्धारकों, संचालकों और नेतृत्व का ध्यान इन बातों की तरफ जा नहीं पाता और फिर बाढ़ या अकाल सामने आ खड़ा हो जाता है।

बुरे कामों की बाढ़ आ जाती है। बिना पानी का स्वभाव समझे विकास के नाम पर कई तरह के काम होते रहते हैं।

यह किसी एक कालखंड की बात नहीं है। दुर्भाग्य से सब समय में ऐसी गलतियां दुहराई जाती रहती हैं। तो एक तरफ प्रकृति और पर्यावरण के खिलाफ ले जाने वाले कामों की बाढ़ आ जाती है तो दूसरी तरफ अच्छे कामों का अकाल पड़ने लगता है। अच्छे विचारों का अकाल पड़ने लगता है।

राजेन्द्र बाबू के जमाने में उन इलाकों में अंग्रेजों की व्यापारिक नीतियों या कहें अनीतियों के कारण बड़ी तेजी से रेल की लाइनें बिछाई गई थीं। रेल लाइन उनके व्यापार और शासन के लिए बड़ी खास चीज बन गई थी। इसलिए उसे आसपास के जमीन से ऊंचा उठाकर रखना जरुरी था। आज लोग इस बात को भूल चुके हैं कि कभी हमारे देश में फैल रहा रेल व्यवस्था का यह जाल अंग्रेज सरकार के भी हाथों में नहीं था। वह कुछ निजी अंग्रेजी कंपनियों की जेब में था।

खुद राजेन्द्र बाबू अपनी आत्मकथा में इस दुखद प्रसंग में लिखते हैं कि ''रेल-लाइनों के कारण बाढ़ की भयंकरता बढ़ जाती है। अपने सूबे में पिछले तीस बरसों में, जितनी बड़ी और भयंकर बाढ़ें आई हैं, सबका मुझे काफी अनुभव है। मेरा यह दृढ़ विचार है कि रेलवे लाइन और डिस्ट्रिक्ट कोर्ट की तथा दूसरी ऊंची सड़कें बाढ़ के कारणों में प्रमुख हैं। यदि इनमें जगह-जगह काफी संख्या में चौड़े पुल बने रहते तो हालत ऐसी न होती। पर यहां तो रेल की कंपनियों के मुनाफे पर ही अधिक ध्यान रखा जाता है। उनको पुल बनवाने के लिए मजबूर नहीं किया जाता, लाइन काटना तो दूर की बात है। बी.एन.डब्लू.रेलवे ने इस मामले में बहुत कंजूसपन दिखलाया है। यद्यपि अब उसमें कई जगह पुल बने हैं, तथापि अब भी बहुत से ऐसे स्थान हैं, जहां पुल की जरुरत है। उसने जो पुल बनवाए हैं, वे जनता के कष्ट दूर करने के ख्याल से नहीं अपने मुनाफे के ख्याल से, क्योंकि जब तक केवल जनता के कष्ट की बात रही, एक न सुनी गई, पर जब प्रकृति ने लाइन को इस तरह तोड़ा कि महीनों रेल चलना बंद हो गया तो उसने मजबूरन कई पुल बनवा दिए। ''

गंगा नहर और पहला इंजीनियरिंग कॉलेज

आज हम देखते हैं कि जलनीतियां बनाई जाने लगी हैं। पहले ऐसा नहीं होता था। समाज अपना एक जलदर्शन बनाता था और उसे कागज पर न छाप कर लोगों के मन में उकेर देता था। समाज के सदस्य उसे अपने जीवन की रीत बना लेते थे। फिर यह रीत आसानी से टूटती नहीं थी। जलनीतियां आती-जाती सरकारों के साथ बनती-बिगड़ती रहती हैं। पर जलदर्शन बदलता नहीं। इसी रीत से उस क्षेत्र विशेष की फसलें किसान समाज तय कर लेता था। सिंचाई के लिए अपने साधन जुटा लेता था।

जब अंग्रेज हमारे यहां आए थे तो हमारे देश में कोई सिंचाई विभाग नहीं था। कोई इंजीनियर नहीं था, इंजीनियरिंग की पढ़ाई नहीं थी। वैसी शिक्षा देने वाला कोई विद्यालय, महाविद्यालय तक नहीं था। सिंचाई की शिक्षा नहीं थी पर सिंचाई का शिक्षण हर जगह था और समाज उस शिक्षण को अपने मन में संजोकर रखता था और उस शिक्षण को अपनी जमीन पर उतारता था। अब अंग्रेज यहां आए हैं- एक बार फिर दुहरा लें तब हमारे यहां एक भी सिविल इंजीनियर नहीं था पर सचमुच कश्मीर से कन्याकुमारी तक, पश्चिम से पूरब तक कोई 25 लाख छोटे-बड़े तालाब थे। इनसे भी ज्यादा संख्या में जमीन का स्वभाव देखकर अनगिनत कुएं बनाए गए थे। वर्षा का पानी तालाबों में कैसे आएगा, किस तरह के क्षेत्र से, यहां-वहां से बहता आएगा- उसका आगौर अनुभवी आंखों से नाप लिया जाता था। फिर यह पानी साल भर कैसे पीने का पानी जुटाएगा और किस तरह की फसलों को जीवन देगा- इस सबकी बारीक योजना कहीं सैकड़ों मील दूर बैठे लोग नहीं बनाते थे- वहीं बसे लोग उस क्षेत्र में अपना बसना सार्थक करते थे। यह परंपरा आज भी पूरी तरह से टूटी नहीं है, हां उसकी प्रतिष्ठा जरूर गिर गई है, नए पढ़े-लिखे समाज के मन में।

आज हम देखते हैं कि जलनीतियां बनाई जाने लगी हैं। पहले ऐसा नहीं होता था। समाज अपना एक जलदर्शन बनाता था और उसे कागज पर न छाप कर लोगों के मन में उकेर देता था। समाज के सदस्य उसे अपने जीवन की रीत बना लेते थे।

पर हमारे इस पढ़े-लिखे समाज को आज यह जानकर अचरज होगा कि हमारे देश की तकनीकी

शिक्षा, सिविल इंजीनियरिंग की सारी आधुनिक शिक्षा की नींव में ये अनपढ़ माना गया, अनपढ़ बता दिया गया, समाज ही प्रमुख था।

देश का पहला इंजीनियरिंग कॉलेज खुला था हरिद्वार के पास रूड़की नाम के एक छोटे-से गांव में। और सन् था 1847। तब ईस्ट इंडिया कंपनी का राज था। ब्रितानी सरकार भी नहीं आई थी। कंपनी का घोषित लक्ष्य देश में व्यापार था। प्रशासन, या लोक कल्याण नहीं। कंपनी तो लूटने के लिए ही बनी थी। ऐसे में ईस्ट इंडिया कंपनी देश में उच्च शिक्षा के झंडे भला क्यों गाड़ती।

उस दौर में आज के पश्चिमी उत्तर प्रदेश का यह भाग एक भयानक अकाल से गुजर रहा था। अकाल का एक कारण था वर्षा का कम होना। पर अच्छे कामों और अच्छे विचारों का अकाल पहले ही आ चुका था और इसके पीछे एक बड़ा कारण ईस्ट इंडिया कंपनी की अनीतियां।

सौभाग्य से उस क्षेत्र में, तब उसे नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेस कहा जाता था, एक बड़े ही सहृदय अंग्रेज अधिकारी काम कर रहे थे। ऊंचे पद पर थे। वे वहां के उपराज्यपाल थे। नाम था उनका जेम्स थॉमसन। लोगों को अकाल में मरते देख उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशकों को एक पत्र लिख इस क्षेत्र में एक बड़ी नहर को बनाने का प्रस्ताव रखा था। ऊपर से उस पत्र का कोई जवाब तक नहीं आया। थामसन ने फिर एक पत्र लिखा। इस बार फिर वही हुआ। कोई जवाब नहीं।

तब जेम्स थॉमसन ने तीसरे पत्र में अपनी योजना में पानी और अकाल, लोगों के कष्टों के बदले व्यापार की, मुनाफे की चमक डाली। उन्होंने हिसाब लिखा कि इसमें इतने रुपए लगाने से इतने ज्यादा रुपए सिंचाई के कर की तरह मिल जाएंगे। ईस्ट इंडिया कंपनी की आंखों में चमक आ गई। मुनाफा मिलेगा तो ठीक। बनाओ। पर बनाएगा कौन ? कोई इंजीनियर तो है नहीं कंपनी के पास। थॉमसन ने कंपनी को आश्वस्त किया था कि यहां गांवों के लोग इसे बनो लेंगे।

कोई ऐरी-गैरी, छोटी-मोटी योजना नहीं थी यह। हरिद्वार के पास गंगा से एक नहर निकाल कर उसे कोई 200 किलोमीटर तक के इलाके में फैलाना था। यह न सिर्फ अपने देश की एक पहली बड़ी सिंचाई योजना थी, दुनिया के कई अन्य देशों में भी उस समय ऐसा कोई काम हुआ नहीं था।

वह योजना खूब अच्छे ढंग से पूरी हुई। तब थॉमसन ने कंपनी से इसकी सफलता को देखते हुए इस क्षेत्र में इसी नहर के किनारे रुड़की इंजीनियरिंग कॉलेज खोलने का भी प्रस्ताव रखा। इसे भी मान लिया गया क्योंकि थामसन ने इस प्रस्ताव में भी बड़ी कुशलता से कंपनी को याद दिलाया था कि इस कॉलेज से निकले छात्र बाद में आपके साम्राज्य का विस्तार करने में मददगार होंगे।

यह था सन् 1847 में बना देश का पहला इंजीनियरिंग कॉलेज। देश का ही नहीं, एशिया का भी यह पहला कॉलेज था, इस विषय को पढ़ाने वाला। तब इंग्लैंड में भी इस तरह का कोई कॉलेज नहीं था। रुड़की के इस कॉलेज में कुछ साल बाद इंग्लैंड से भी छात्रों का एक दल यहां पढ़ने के लिए भेजा गया था।

कॉलेज का दर्जा तो उठा है पर दुर्भाग्य से कॉलेज जिन लोगों के कारण बना, जिनके कारण वह विशाल सिंचाई योजना जमीन पर उतरी, जिन लोगों ने अंग्रेजों के आने से पहले देश में, देश के मैदानी भागों में, पहाड़ों में, रेगिस्तान में, देश के तटवर्ती क्षेत्रों में जल दर्शन का सुंदर संयोजन किया था, वे लोग आज कहीं पीछे फेंक दिए गए हैं।

तो इस कॉलेज की नींव में हमारा अनपढ़ बता दिया गया समाज मजबूती से सिर उठाए खड़ा है। वह तब भी नहीं दिखा था अन्य लोगों को और आज तो हम उसे पिछड़ा बता कर उसके विकास की बहुविध कोशिश में लगे हैं। इस प्रसंग के अंत में यह भी बता देना चाहिए कि 1847 में कॉलेज खुलने से पहले वहां बनी वह लंबी नहर आज भी पश्चिम उत्तर प्रदेश के खेतों में गंगा का पानी सिंचाई के लिए वितरित करती जा रही है। आज रुड़की इंजीनियरिंग कॉलेज को शासन ने और ऊंचा और दर्जा देकर उसे आईआईटी रुड़की बना दिया है।

कॉलेज का दर्जा तो उठा है पर दुर्भाग्य से कॉलेज जिन लोगों के कारण बना, जिनके कारण वह विशाल

सिंचाई योजना जमीन पर उतरी, जिन लोगों ने अंग्रेजों के आने से पहले देश में, देश के मैदानी भागों में, पहाड़ों में, रेगिस्तान में, देश के तटवर्ती क्षेत्रों में जल दर्शन का सुंदर संयोजन किया था, वे लोग आज कहीं पीछे फेंक दिए गए हैं।

तूफान और तटीय जंगल

हमारे देश की समुद्र तटीय रेखा बहुत बड़ी है। पश्चिम में गुजरात के कच्छ से लेकर नीचे कन्याकुमारी घूमते हुए यह रेखा बंगाल में सुंदरवन तक एक बड़ा भाग घूम लेती है। पश्चिमी तट पर बहुत कम लेकिन पूर्वी तट पर अब समुद्री तूफानों की संख्या और उनकी मारक क्षमता भी बढ़ती रही है।

इसके पीछे एक बड़ा कारण है हमारे कुल तटीय प्रदेशों में उन विशेष वनों का लगातार कटते जाना, जिनके कारण ऐसे तूफान तट पर टकराते समय विध्वंस की अपनी ताकत काफी कुछ खो देते थे।

समुद्र और धरती के मिलन बिंदु पर, हजारों वर्षों से एक उत्सव की तरह खड़े ये वन बहुत ही विशिष्ट स्वभाव लिए होते हैं। दिन में दो बार ये खारे पानी में डूबते हैं तो दो बार पीछे से आ रही नदी के मीठे पाने में। मैदान, पहाड़ों में लगे पेड़ों से, वनों से इनकी तुलना करना ठीक नहीं। वनस्पति का ऐसा दर्शन अन्य किसी स्थान पर संभव नहीं। यहां इन पेड़ों की, वनों की जड़ें भी ऊपर रहती हैं। अंधेरे में, मिट्टी के भीतर नहीं, प्रकाश में, मिट्टी के ऊपर। जड़ें, तना और फिर शाखाएं- तीनों का दर्शन एक साथ करा देने वाला यह वृक्ष, उसका पूरा वन इतना सुंदर होता है कि इस प्रजाति का एक नाम हमारे देश में सुंदर, सुंदरी ही रख दिया गया था। उसी से बना है सुंदरवन।

लेकिन आज दुर्भाग्य से हमारा पढ़ा-लिखा संसार, हमारे वैज्ञानिक कोई 13-14 प्रदेशों में फैले इस वन के, इस प्रजाति के अपने नाम एकदम भूल गए हैं। जब भी इन वनों की चर्चा होती है, इन्हें इनके अंग्रेजी 'मैंग्रोव'- से ही जाना जाता है। हमारे ध्यान में भी यह बात नहीं आ पाती कि देश में, कम से कम इन प्रदेशों की भाषाओं में, बोलियों में तो इन वनों का नाम होगा। उसके गुणों की स्मृति होगी।

तटीय प्रदेशों से प्रारंभ करें तो पश्चिम में ऊपर गुजराती व कच्छी में इसे चैरव, फिर मराठी व कोंकणी में खार पुटी, तिवर, कन्नड़ में कांडला काडु, तमिल में सधुप्पू निल्लम काड्ड, तेलुगू में माडा आडवी, उड़िया में झाऊवन कहा जाता है। बांग्ला में तो सुंदरवन सबने सुना ही है। एक नाम मकड़सिरा भी है। और हिन्दी प्रदेश तो समुद्र के तट से दूर ही हैं। पर ऐसा नहीं होता कि जो चीज जिस समाज में नहीं है, उस समाज की भाषा उसका नाम ही नहीं रखे। हिन्दी में इसे चमरंग वन कहते थे। पर अब यह नए शब्दकोशों से बाहर हो गया है।

पर्यावरण को ठीक से जानने वाले बताते हैं कि आंध्र और उड़िया में खासकर पाराद्वीप वाले भाग में चमरंग वनों को विकास के नाम पर खूब ही उजाड़ा है। इसीलिए पाराद्वीप ऐसे ही एक चक्रवात में बुरी तरह से नष्ट हुआ था। फिर यह भी कहा गया था कि उसके लिए एक मजबूत दीवार बना दी जाएगी। कुछ ठंडे देशों का अपवाद छोड़ दें तो पूरी दुनिया में धरती और समुद्र के मिलने की जगह पर प्रकृति ने सुरक्षा के ख्याल से ही यह हरी सुंदर दीवार, लंबे-चौड़े सुंदरवन खड़े किए थे। आज हम अपने लालच में इन्हें काट कर इनके बदले पांच गज चौड़ी सीमेंट कंक्रीट की दीवार खड़ी कर सुरक्षित रह जाएंगे- ऐसा सोचना कितनी मूर्खता होगी। चौथी की कक्षाओं में यह पढ़ा दिया जाता है कि पृथ्वी पर कोई सत्तर प्रतिशत भाग में समुद्र है और धरती बस तीस प्रतिशत ही है। समुद्र के सामने हम नगण्य हैं। ये सुंदरवन, चमरंग वन हमारी गिनती बनी रहे- ऐसी सुरक्षा देते हैं।

दीवारें खड़ी करने से समुद्र पीछे हट जाएगा, तटबंध बना देने से बाढ़ रुक जाएगी, बाहर से अनाज मंगवाकर बांट देने से अकाल दूर हो जाएगा- बुरे विचारों की ऐसी बाढ़ से, अच्छे विचारों के ऐसे ही अकाल से हमारा यह जल संकट बढ़ा है।

दीवारें खड़ी करने से समुद्र पीछे हट जाएगा, तटबंध बना देने से बाढ़ रुक जाएगी, बाहर से अनाज मंगवाकर बांट देने से अकाल दूर हो जाएगा- बुरे विचारों की ऐसी बाढ़ से, अच्छे विचारों के ऐसे ही अकाल से हमारा यह जल संकट बढ़ा है।

सचिन स्तुति का महापर्व

रामफजल

सचिन तेंदुलकर एक अच्छे क्रिकेट खिलाड़ी हैं। लेकिन वे देश से ज्यादा समर्पित अपनी कमाई और विज्ञापनदाता कंपनियों के लिए रहे हैं। सचिन को भगवान बनाने और महान विदाई को प्रायोजित करने में भी मुनाफाखोर कंपनियों का खेल था। यदि खेल में भारत रत्न देना ही था तो ध्यानचंद उसके पहले सही हकदार थे। हमें कैसा लगेगा जब भारत रत्न जूते या कोका-कोला बेचता दिखाई देगा?

''ओड़िशा के पश्चिम में लामटापुट नामक एक गांव है। वहां गदबा आदिवासी रहते हैं। उनके जीवन पर एक वृत्त चित्र बना रहा हूं। रात के दो बजे नाच का दृश्य है। हम सब थक कर चूर हैं लेकिन हमें अच्छा भी लग रहा है। तरह-तरह की बातचीत और गपशप चल रही है। अचानक हमारा (वही) कौतूहल जाग उठता है और हम (ग्रामवासियों से) पूछ बैठते हैं, सचिन को पहचानते हैं? हमें विस्मित करते हुए सभी ने जवाब दिया, नहीं जानते। लामटापुट और उस जैसे सब गांवों में अभी बिजली नहीं आई है। टीवी पर सवार हो सचिन इसलिए असंख्य भारतीयों तक पहुंच नहीं पाए हैं।

''बस्तर के गांवों के आदिवासी भी इसी तरह नहीं जानते कि कौन सचिन है और कौन सौरभ (गांगुली)। ऐसे में सचिन केवल रोशनी से जगमगाते इंडिया के दूत हैं। अंधकार वाला भारत उन्हें जानता नहीं। शायद उसका स्वाभिमान उन्हें पहचानना न भी चाहता हो?''

ऊपर का यह उद्धरण वृत्तचित्र निर्माता सौमित्र दस्तीकार के एक अत्यंत संक्षिप्त लेख से लिया गया है, जो टाइम्स ऑफ इंडिया समूह के बांगला अखबार 'एई समय' के सचिन विशेषांक से लिया गया है इसमें सचिन तेंदुलकर की सात-आठ इंच वाली तस्वीर के नीचे लिखा है ''संख्या जुड़े इ तिनि। हाई फाइव अगुनति। अधिक की? पी.टी.ओ.।'' संख्या का बांगला में एक अर्थ विशेषांक होता है, इस हिसाब से संख्या 'जुड़े इ तिनि' का अर्थ होगा विशेषांक पूरा उन्हीं से भरा और जुड़ा हुआ है। एक दूसरा अर्थ सचिन के रनों की अपार संख्या है। आक्सफोर्ड एडवांस्ड लर्नर्स शब्द कोश के मुताबिक 'हाई फाइव' का अर्थ होता है विजय का जश्न मनाने और आनंद प्रकट करने के लिए दो व्यक्तियों का अपनी-अपनी बांह उठाना। यह एक अमरीकी तरीका है। यह अर्थ जानकर हमें अखबार में छपी नेताओं की तस्वीरों का ध्यान आया जिनमें वे बांहें उठाए दिखते हैं। शायद यह बांहें उठाने का उपक्रम ही हाई फाइव है। 'अगुनति' का अनुवाद जरूरी नहीं, वह हिंदी अनगिनत है। 'अधिक आर की?' और क्या अधिक? पी.टी.ओ. यानी पृष्ठ उलटिए, आगे बढ़िए।

यह लेख सचिन तेंदुकर के क्रिकेट से संन्यास लेने और उनके भारत रत्न प्राप्त करने के बारे में लिखा जा रहा है। इसे लिखने केलिए हमने बहुत सारे अखबार, कई विशेषांक और एक किताब पढ़ी है। सचिन तेंदुलकर पर हमारे ख्याल में शायद अंगरेजी में बहुत सारी किताबें है। हमने जिस किताब को पढ़ा है उसमें कहा गया है कि सचिन ने जिने शतक बनाए हैं उतनी ही किताबें उनके बारे में हैं। दो किताबों की कीमत का भी थोड़ा बहुत अंदाजा हमें है- शायद उनकी कीमत एक हजार से पांच हजार या उससे भी अधिक है। सीएनआईबीएन चैनल सचिन जैसी या उनसे ज्यादा बड़ी हस्ती वाले इंडियन अमिताभ

रामफजल खेलों पर एक चिर-परिचित कलम है जो खेलों की राजनीति और व्यवसायिकता पर पैनी नजर दौड़ाती रही है।

बच्चन से सचिन तेंदुलकर के कीर्ति-कलाप पर इंटरव्यू लेता है जो देश के आदिवासी राज्य झारखंड के प्रमुख हिंदी अखबार के मुखपृष्ठ से आरंभ होकर 9वें पृष्ठ पर लगभग चार कालमों में छपता है। अमिताभ बच्चन लजाते हुए सीएनआईबीएन के (मालिक या संपादक, ठीक पता नहीं) राजदीप सरदेसाई को कहते हैं।

''आप खामखाह मेरा नाम इतने बड़े और इतने प्रसिद्ध इंसान (सचिन तेंदुलकर) के साथ जोड़ रहे हैं.... भारत का नाम उन्होंने उज्ज्वल किया है और जिस तरह से उज्ज्वल किया है वो अपने खेल के द्वारा, तो ये दोनों का एक बहुत बड़ा मिश्रण है। मैं ऐसा मानता हूं कि भारतीय होने के नाते जब वो बाहर जाते हैं भारत का तिरंगा लहराता है तो हमारे अंदर एक जागरूकता होती है देश के प्रति, अपने आप को मनाते हैं कि हम उस महान देश के वासी हैं, जिस देश में सचिन तेंदुलकर निवास करते हैं।''

आदमी कितना विचित्र है, यह थोड़ा सा सोचने पर ही पता लगने लगता है। एकदम प्रारंभ में दिए गए उदाहरण से जान पड़ेगा कि यह लेखक अंधकार वाले भारत के प्रति बहुत संवेदनशील है। लेकिन सच्चाई तो यह है कि जिस दिन शाम को उसे पता लगा कि इंडिया के दो विकेट गिर गए हैं और सचिन खेलने के लिए उतर रहा है तो वह मिलने आए व्यक्ति से क्षमा मांग कर दौड़ा-दौड़ा टेलीविजन पर सचिन की अंतिम पारी को देखने गया और दत्तचित्त हो उसने सचिन को एक-एक गेंद को खेलते देखा। यह देखना एक ऐसा अनुभव था जो केवल वही व्यक्ति अनुभव कर सकता है, जिसे क्रिकेट से प्रेम हो और जिसने कम से कम इतना क्रिकेट खेला हो कि वह क्रिकेट के सौंदर्य को पहचान पाए।

सचिन उस वक्त एक तरह से मानव स्वभाव की सफलता-असफलता की सारी अनुभूतियों के साथ एक-एक गेंद को जिस एकाग्रता के साथ खेल रहे थे, वह वर्णनातीत है। उनके पैर उनके यौवन के दिनों की त्वरा के साथ प्रौढ़ जीवन की मंथरता की संगति बैठाते हुए हरकत कर रहे थे और बल्ला गेंद को कभी थपथपता था तो कभी उस पर प्रहार करता था। खेल समाप्त होते ही दो-तीन मित्रों के फोन आए और सबका एक ही सवाल था, 'तुमने आज सचिन को खेलते देखा।' हां, हमने कहा तो सुनने को मिला 'न देखते तो हम तुम्हें अभागा कहते।' दूसरे दिन सुबह से ही हम टेलीविजन पर सचिन को देखने गए। पहले दिन का जादू नहीं था पर जो था वह एकदम कम भी नहीं था। तीसरे दिन मैच समाप्त होने पर सचिन ने जो कुछ कहा उसे सुनते हुए किसी बम्बइया फिल्म के किसी भावुक दृश्य को देखने जैसा महसूस हुआ। कृतज्ञता एक शक्ति भी हो सकती है, यह अनुभव हुआ। सचिन के कृतज्ञता भाव ने उनकी रेकार्डप्रियता और उनकी एक प्रकार की आत्मरति के प्रति हमारी चिढ़ को भुला दिया और हम उस हुजूम में थोड़ी देर के लिए शामिल हो गए, जो कंपनियों, अखबारों, टेलीविजन के चैनलों और क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड ने महान विदाई को प्रायोजित कर पैदा किया था और भयंकर मुनाफाखोरी की थी।

प्रायोजित महान विदाई

मुंबई में जो महान विदाई प्रायोजित हुई, उसके पीछे वे सारी कंपनियां थी, जिनके माल को सचिन देश के लोगों को बेवजह खरीदने को प्रेरित करते हैं। कोकाकोला, अडिडास इंडिया, लुमिनस पावर, पानी साफ करने वाली कंपनी, बीमा करवाने वाली कंपनी और पांच-छह कंपनियां जिनका नाम याद नहीं आ रहा हैं सब जुट गई थी महान विदाई का दोहन करने। ऐसा मौका कब फिर मिलने वाला है।

अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट कौंसिल द्वारा पहले से तय

मैचों के स्थान और तिथियों के अनुसार सचिन तेंदुलकर को अपना 200वां टेस्ट मैच दक्षिण अफ्रीका में खेलना था (पिछले डेढ़ वर्षों के खेल के आधार पर भारतीय क्रिकेट टीम का चयन होता तो सचिन टीम में शामिल नहीं भी किए जा सकते थे)। कंपनियों और स्वयं सचिन को यह मंजूर नहीं था कि उनका विदाई मैच दक्षिण अफ्रीका में हो। अफ्रीका में होने से टेलीविजन पर अहर्निश महान विदाई का कार्यक्रम करने में कठिनाई होती, कंपनियों को तेंदुलकर को 100 करोड़ रु. का जो सालाना भुगतान करना पड़ता है वह हजारों करोड़ रुपयों की कमाई में तब्दील नहीं हो पाता। भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड के अधिकारी जिस सुगमता से चार्टर विमान से कानपुर-दिल्ली, दिल्ली-चेन्नई की यात्रा करते हैं उस सुगमता से जोहानीसबर्ग से डरबन की यात्रा नहीं कर पाते और क्या-क्या नहीं हो पाता, उसकी एक खासी लंबी फेहरिश्त बन सकती है।

मजे की बात यह है कि क्रिकेट कौंसिल द्वारा टेस्ट मैचों के स्थान और तिथियों की घोषणा के बाद चुपके से भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड ने वेस्ट इंडीज क्रिकेट संगठन से, जिसकी बदहाली इतनी ज्यादा है कि वह अपने खिलाड़ियों को उचित पारिश्रमिक भी नहीं दे पाता और आए दिन खिलाड़ियों से उसका झगड़ा होता रहता है, सांठ-गांठ कर भारतीय क्रिकेट टीम के दक्षिण अफ्रीका दौरे से पहले वेस्ट इंडीज के साथ दो टेस्टों की श्रृंखला आयोजित कर डाली। इसके साथ भारतीय बोर्ड ने दक्षिण अफ्रीका को सूचित किया कि भारतीय टीम अफ्रीका के साथ तीन के बजाए दो ही टेस्ट खेलेगी। अफ्रीका का नाराज होना स्वाभाविक था लेकिन दक्षिण अफ्रीका भारत से कहीं अधिक समृद्ध होने के बावजूद दक्षिण अफ्रीका की क्रिकेट संस्था भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड से पैसों के मामले में कमजोर है। सो उसने घुटने टेक दिए। भारत भले ही गरीब हो पर भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड दुनिया की सब क्रिकेट संस्थाओं से ज्यादा धनी है और पैसा ऐसी चीज है जिसके आगे नतमस्तक न होने का साहस कितनों में होता है!

वेस्ट इंडीज का दौरा घोषित होने पर हमारे सचिन तेंदुलकर ने घोषणा कर दी कि वे अपना 199वां टेस्ट कोलकाता में और 200वां अंतिम टेस्ट अपने शहर मुंबई में खेलेंगे। इस घोषणा के बाद शुरू हो गया महान विदाई पर्व और उसके नाना आयोजन। वेस्ट इंडीज के साथ दो टेस्टों की श्रृंखला गौण हो गई और महान विदाई पर्व प्रधान।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और पश्चिम बंगाल के भूतपूर्व वित्त मंत्री अशोक मित्र ने, जिनसे इस कलमघसीट को इसलिए चिढ़ है कि वे हिंदी और हिंदी भाषी क्षेत्र को बड़ी तुच्छ नजर से देखते हैं, लेकिन उनके क्रिकेट और साहित्य प्रेम के प्रति उसके मन में आदर है, हाल में 85 वर्ष की उम्र में बांगला में एक पाक्षिक पत्र निकाला है। उनकी लगन के प्रति मन में सहज ही आदर का भाव पैदा होता है। हिंदी और हिंदी भाषा क्षेत्र के मामले को छोड़ कर मर्यादाओं के भंग पर तिलमिला कर लिखे गए उनके लेख हमेशा मर्यादाओं के प्रति हमें सजग करते हैं। 14 नवंबर के *डेली टेलीग्राफ* में अपने लेख में उन्होंने ये सवाल उठाया है कि

> ''तेंदुलकर ने कैसे यह मान लिया कि वेस्ट इंडीज के खिलाफ दोनों टेस्टों की टीम में चुने जाएंगे। तेंदुलकर ने ऐसा मान लिया क्योंकि वे भगवान हैं और कोई दूसरा उनके आचरण पर उंगली तक उठा नहीं सकता। उनके हाल के प्रदर्शन को देखते हुए वेस्ट इंडीज के खिलाफ उनका भारतीय टीम में चुना जाना कुछ वैसा है जिसे अर्थशास्त्री अवसर की लागत (औपरच्युनिटी कास्ट) के रूप में देखेंगे। उनके चुने जाने से कोई उदीयमान खिलाड़ी टीम में लिए जाने से वंचित हो सकता है, क्या ऐसा कोई सोचता है?''

जब कोई भारतीय क्रिकेट खिलाड़ी भारत के लिए खेलने की और व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को गौण बताने की पाखंड भरी बात कहता है तो यही लगता है कि कोई नरेंद्र मोदी या कोई राहुल गांधी या कोई मुलायम सिंह कह रहा है कि उसके लिए देश का स्वार्थ सर्वोपरि है और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा एकदम गौण। क्रिकेट खिलाड़ी पैसों और व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के लिए ज्यादा खेलते हैं, देश के लिए कम।

एक था मांकड़, एक था हजारे

तेंदुलकर के स्वयं चुने जाने की बात से हमें आज से 63 वर्ष पहले की एक घटना बेहद याद आई। उस वक्त की भारतीय टीम के लिए विनू मांकड़ की उपयोगिता सचिन तेंदुलकर से कई गुना ज्यादा थी (यह हमारा मत नहीं, यह एक प्रकार से सर्वसम्मत मत है)। एक तरह से भारत के शुरूआती पेशेवर खिलाड़ी के रूप में अपनी जीविका के लिए वे लंकाशायर क्रिकेट लीग में हैसिंग्लटन नामक क्लब की ओर से मई से सितंबर तक खेलते थे और अक्तूबर से भारत में (तब क्रिकेट आज की तरह हिंदुस्तान में रात में या मई-जून के गरमी के महीनों और चौमासे के महीनों में नहीं खेला जाता था, अक्तूबर के अंतिम सप्ताह से मार्च के अंतिम सप्ताह तक खेला जाता था)। 1952 में मई से भारतीय टीम का इंग्लैंड दौरा था। हैसिंग्लटन क्लब विनू मांकड पर जोर दे रहा था कि वे 1952 के क्रिकेट मौसम के लिए अनुबंध करें। ऐसे में विनू मांकड़ ने भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड से अनुरोध किया कि अगर वह उन्हें भारतीय टीम में चुने जाने का आश्वासन दे तो वे हैसिंग्लटन क्लब से अनुबंध करने से इंकार कर देंगे। लेकिन भारतीय बोर्ड ने आश्वासन देना अस्वीकार कर दिया और उनकी जगह हीरालाल गायकवाड़ नामक बाएं हाथ के गेंदबाज को चुना (दौरे में गायकवाड़ को एक टेस्ट मैच में भी नहीं खिलाया गया)। भारत का इंग्लैंड का दौरा शुरू हुआ और पहले टेस्ट मैच में शून्य पर चार भारतीय बल्लेबाज इंग्लैंड के नए तेज गेंदबाज (एक खदान मजदूर के बेटे) फ्रेडी ट्रुमैन की गेंदों पर आउट हो गए। कप्तान विजय हजारे और दत्तु फड़कर अपने जौहर से भारत की संख्या एक सौ के पार ले गए। दूसरी पारी में भी लगभग वही हाल रहा। भारत जिस कदर हारा उसे देखकर हैसिंग्लटन क्लब के अधिकारियों को दया आई और उन्होंने विनू मांकड़ को यह छूट दे दी कि वे अनुबंध के बावजूद टेस्ट मैचों में (अन्य मैचों में नहीं) भारत की ओर से खेल सकते हैं। दूसरे टेस्ट मैच में विनू भारत की ओर से खेले और उन्होंने 184 व 72 रन बनाए और पांच विकेट लिए। 1952 का यह दूसरा टेस्ट, भारत-इंग्लैंड टेस्ट क्रिकेट के इतिहास में मांकड़ टेस्ट के नाम से याद किया जाता है। यहां विनू मांकड़ और विजय

हजारे की प्रशस्ति में बहुत कुछ लिखने का मन होता है पर वह कुछ ज्यादा ही अतिरेक हो जाएगा। बस इतना भर लिखते हैं कि विजय हजारे, जो बहुतों की राय में सचिन से किसी तरह कम नहीं बल्कि उनसे श्रेष्ठ बल्लेबाज रहे हैं, 1953-54 के वेस्ट इंडीज के दौरे के बाद (जिसमें उन्होंने कोई शतक की पारी नहीं खेली) भारतीय टीम से निकाल दिए गए। बड़ौदा की ओर से रणजी ट्राफी खेलते वे क्रिकेट से विदा हुए और विनू मांकड़ राजस्थान की ओर से पेशेवर खिलाड़ी की हैसियत से खेलते हुए 44-45 वर्ष की उम्र में क्रिकेट से विदा हुए।

करोड़पति-अरबपति खिलाड़ी

तब से दुनिया बहुत बदल गई है। क्रिकेट तो बड़ी-बड़ी कंपनियों और सटोरियों की मंडी बन गया है, जिसमें हर भारतीय टेस्ट खिलाड़ी करोड़पति है और मास्टर ब्लास्टर सचिन तेंदुलकर एक हजार करोड़ के व कप्तान महेंद्र सिंह धोनी छह-सात करोड़ के मालिक बताए जाते हैं। तेंदुलकर की तारीफ में कहा जाता है कि वे जिन कंपनियों का विज्ञापन करते हैं उनके प्रति उनकी निष्ठा इतनी प्रबल है कि कोई उनके एक बल्ले की तस्वीर ले रहा था तो उन्होंने उसे रोक

दिया क्योंकि बल्ले पर उस कंपनी की छाप नहीं थी, जिसका वे अपने बल्ले पर विज्ञापन करते हैं।

वेस्ट इंडीज से टेस्ट श्रृंखला शुरू होने के पहले अभ्यास बतौर सचिन ने रणजी ट्राफी में हरियाणा के खिलाफ मैच खेला। मैच हरियाणा के किसी शहर पंचकूला, रोहतक, भिवानी में न खेला जाकर लावली नाम के गांव या कस्बे में खेला गया। कहते हैं मुख्यमंत्री हुड्डा ने हरियाणा के लोगों को अगले जनम में भगवान का दर्शन करवाने को स्थगित करते हुए इसी जनम में क्रिकेट के भगवान का दर्शन करवाया ताकि आने वाले चुनावों में सचमुच के भगवान की उन पर कृपा हो।

राहुल भट्टाचार्य ने, जिन्होंने भारतीय क्रिकेट टीम के पाकिस्तान दौरे पर एक बढ़िया और दिलचस्प किताब तथा गायना (वेस्ट इंडीज) की पृष्ठभूमि पर एक उपन्यास लिखा है, *इंडिया टुडे* में 'श्रद्धालुओं के बीच भगवान' शीर्षक से अपने सुंदर लेख में सचिन की लाहली यात्रा का बड़ा मोहक वर्णन किया है। उसमें से कुछ रूखी बातों को पाठकों की जानकारी के लिए हम लिख रहे हैं-

> '' खेल के बाद वे (सचिन) दिल्ली से भेजी गई सफेद रंग की पांच सीरिज (यह पांच सीरिज क्या बला है, हम नहीं जानते) की एक बीएमडबलू कार में बैठ कर लौटते हैं। एक करार के मुताबिक वे सार्वजनिक मौकों पर किसी दूसरे ब्रांड की कार में सफर नहीं कर सकते..कैनाल गेस्ट हाउस के गेट पर पहले से ही भारी भीड़ उनका इंतजार कर रही है। वहां उन्हें मुंबई के चार सीनियर खिलाड़ियों के साथ ठहराया गया है। दिल्ली के आईटीसी होटल मौर्या से छह लोगों की टीम आई है जो गेस्ट हाउस में उनके लिए खाना तैयार करती है। उनके खाने में फूड पायजनिंग (भोजन का विषाक्त होना) जैसी कोई बात हो गई तो क्या नतीजा होगा!''

वेस्ट इंडीज के खिलाफ पहले टेस्ट मैच में सचिन को 7 रन पर अंपायर द्वारा एलबीडबलू आउट करार देने के निर्णय के खिलाफ ज्यादातर अखबारों और क्रिकेट विशेषज्ञों ने जिस ढंग से फतवा दिया, वह कहीं हमारी उस मानसिकता का परिचय देता है जो 'हम हर हालत में सही और दूसरे हर हालत में गलत' मानती है। एलबीडबलू आउट करार दिए जाने पर कोई भी बल्लेबाज पूरी तरह आश्वस्त नहीं होता और सचिन ने तनिक भर आश्वस्त न होने का संकेत दिया था। अशोक मित्र ने इस प्रकरण की चर्चा करते हुए अपने लेख में लिखा है,'भगवान, भगवान की हैसियत में कैसे आउट हो सकता है। एक अंपायर उसे आउट करार देने का दु:साहस (या अधर्म) कैसे कर सकता है?'

उपभोक्ता का उन्माद

सचिन तेंदुलकर की चर्चा करते हुए एक बात पर विशेष ध्यान जाता है कि हमारा मध्य वर्ग नागरिक के बजाए किस प्रकार उपभोक्ता बनता जा रहा है। बंगाल में शास्त्रीय गायन से अलग लोकप्रिय संगीत की दीर्घ परंपरा है, जिसमें रवींद्र संगीत, नजरूल संगीत, द्विजेंद्र (लाल राय, मेवाड़ पतन आदि नाटकों के लेखक) संगीत की परंपरा के साथ और बाद आधुनिक गान की रीति चली और फिर उसके साथ और बाद जीवनमुखी गान की। ये सब आज भी चल रही हैं, कोई भी लुप्त नहीं हुई है। जीवनमुखी गान की रीति में से नक्सलवादी, बेरोजगार और हाशिए पर धकेले गए हर प्रकार के युवाओं के कई बैंडों (संगीत वृंद) का उदय हुआ। इन बैंडों ने बंगाल के जन आंदोलन के गण संगीत की परंपरा में कोरस गायन को अपना माध्यम बनाया। हमारे देश के अन्य भागों के बैंडों से (जो एकदम छिछले और अश्लीलता भरे गाने सुनते हैं) बांग्ला के बैंड एकदम भिन्न हैं। एक ऐसा ही बांग्ला बैंड है 'चन्द्रबिंदु', जिसके संयोजकों में *प्रतिदिन* अखबार की रविवारी पत्रिका के संपादक अनिंद्य चट्टोपाध्याय हैं। उनके बैंड चन्द्रबिंदु का एक गाना 'खेलछे सचिन' (खेल रहा है सचिन) बहुत लोकप्रिय हुआ है। अनिंद्य चट्टोपाध्याय अपने इस गाने की लोकप्रियता पर एक प्रकार से क्षोभ प्रकट करते हुए लिखते हैं,

> ''हमारा बैंड लगभग उसी समय शुरू हुआ था जब सचिन ने टेस्ट मैचों में पदार्पण किया। 'खेलछे सचिन' गाने को लेकर इतनी बात (हल्ला) हो रही है, लेकिन जिस प्रकार लोगों के मन में यह गाना बैठ गया है वह थोड़ी घबराहट पैदा करता है। इसका कारण और कुछ नहीं, गाने का अर्थ है। हमने जब इस गाने को लिखा था तब उसको जिस अर्थ में मान कर लिखा था, वह अर्थ इतना धुंधला हो सकता है, हमने कभी सोचा ही नहीं था। गाने

को जरा ध्यान से पढ़ने पर ही आप समझ सकते हैं कि हमने सचिन को लेकर कोई 'लाफालाफि' (उछल-कूद-अतिरेकी उत्साह) नहीं की थी। गाना सचिन के चौके-छक्के मारने के बारे में बिलकुल ही नहीं है। गाना है उपभोक्तावाद के बारे में। कैसे इसने (उपभोक्तावाद ने) धीरे-धीरे सारे वायुमंडल को ग्रस लिया है, यहां तक कि सचिन की जैसी विराट उपस्थिति को उसने बड़ी आसानी से अपने कब्जे में ले लिया है।''

उपभोक्तावाद के ज्वार में सचिन के इस तरह बह जाने को लेकर ही हमारा गाना था। लेकिन हो क्या रहा है ? हम देख रहे हैं जैसे ही सचिन की कोई भी महान कीर्ति टीवी पर प्रकट होती है वैसे ही 'खेलछे सचिन' गाना बज उठता है। क्या विडंबना है, पूरा उलटा (विपरीत) अर्थ! क्या किया जाए? सिर्फ टीवी ही नहीं जब भी कहीं हमारा बैंड अपना कार्यक्रम पेश करने जाता है तो हल्ला शुरू हो जाता है कि 'खेलछे सचिन' गाइये और अनुरोध को टालने में असमर्थ हम जैसे ही आलाप संगीत बजाना शुरू करते हैं, नाच शुरू हो जाता है और नाच भी कैसा? भीषण, भयावह !''

सचिन की कहानी एक सफल कहलाने वाले व्यक्ति की कहानी है जिसने अपनी लगन से 34 हजार से भी ज्यादा रन बनाए और अपनी कमीज, जूतों, बल्लों पर कंपनियों के छापे लगा कर और कंपनियों के माल का विज्ञापन कर एक हजार करोड़ रुपए कमाए। इन सबसे देश का क्या भला हुआ और क्या कल्याण हुआ कि उन्हें भारत रत्न प्रदान किया गया ?

इसके बाद अनिंद्य चट्टोपाध्याय ने जो लिखा है उसे अनुवाद करने के बजाए एक घटना के रूप में हम लिख रहे हैं। एक कार्यक्रम में चन्द्रबिंदु बैंड ने अपने गाने में थोड़ा सा परिवर्तन किया, 'खेलछे सचिन' की जगह 'खेलछे दादा' (यानी सौरभ गांगुली) कर दिया। उन दिनों ग्रेग चैपल (भारतीय क्रिकेट टीम के आस्ट्रेलियाई प्रशिक्षक, जिन्होंने सौरभ गांगुली का भारतीय टीम में चयन नहीं होने दिया था) बंगाल के परम शत्रु के रूप में चिह्नित हो गए थे। इत्तफाक से सौरभ गांगुली उस कार्यक्रम में उपस्थित थे, लेकिन बैंड के गायकों को इसका पता नहीं था। लेकिन गाने में सचिन की जगह दादा के उच्चारण से जो हुआ उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उपस्थित समुदाय में (ग्रेग चैपल के खिलाफ) एक ऐसा उन्माद पैदा हुआ, जो सांप्रदायिक दंगे के समय के उन्माद जैसा था। उपस्थित समुदाय चिल्ला रहा था-कहां खेल रहा है दादा? गाने के उपभोक्ता को केवल सौरभ की मांग थी, सचिन-वचिन नहीं सिर्फ सौरभ।

भारत रत्न के अधिकारी ध्यानचंद

ऐसा लगता है कि प्रारंभ में सचिन की स्तुति करने के बाद हम उसके पीछे पड़ गए हैं, लेकिन यहां पीछे पड़ना दरअसल सचिन के खिलाफ नहीं है। वह तो सचिन वंदना और उन समाज विरोधी ताकतों यथा कंपनियों की दादागिरी के खिलाफ है। सिर्फ पानी को बिक्री का माल बनाने के अमानुषिक व्यापार के खिलाफ ही नहीं बल्कि हमारी सारी प्राकृतिक संपदा को लूटने वाले मुनाफाखोर तंत्र, विज्ञापन उद्योग और जनविरोधी मीडिया उद्योग, भ्रष्ट राजनीतिक दलालों और देश की निकम्मी सरकार के खिलाफ हैं जिन्होंने सचिन को और उसके पांच फुट पांच इंच कद को मुकेश अंबानी की एंटिला नाम के बदसूरत बहुमंजिला निवास स्थान जैसा कद्दावर बना दिया है और उसकी एक परिणति उन्हें 'भारत रत्न' प्रदान करने में देखी जा सकती है।

अगर खेलकूद के क्षेत्र से भारत रत्न कहलाने वाला कोई हो सकता है तो वह सिर्फ ध्यानचंद ही हो सकते थे जिनके नेतृत्व में 1936 के बरलिन ओलंपिक खेलों में हिटलर की मौजूदगी में उनके नस्लवादी सिद्धांत को धता बताते हुए हाकी फाइनल में भारत ने जर्मनी को 8-1 से हराया था। हिटलर आठ गोल पूरे होने के पहले स्टेडियम से खिसक गया था ताकि उसे ध्यानचंद को तमगा पहनाना न पड़े। कहते हैं अगले दिन हिटलर ने ध्यानचंद को बुला भेजा और उन्हें जर्मनी में कोई बड़ा पद देने का प्रस्ताव रखा, जिसे ध्यानचंद ने तत्काल अस्वीकार कर दिया। ध्यानचंद को भारत रत्न प्रदान करने की मांग कम से कम एक दशक से की जा रही थी। *हिंदुस्तान टाइम्स* का समाचार है

कि इस साल जुलाई में भारत रत्न प्रदान करने का प्रस्ताव सरकार के विचाराधीन था। यह प्रस्ताव विचाराधीन ही रह गया और तेंदुलकर के क्रिकेट से संन्यास लेने के वक्त दिए गए मर्मस्पर्शी कृतज्ञता ज्ञापन के बाद सरकार ने आनन-फानन में जैसे इंदिरा गांधी ने अपनी गद्दी बचाने के लिए इमरजेंसी की घोषणा की थी, कुछ उसी तरह सचिन को एक टेलीफोन वार्ता के बाद भारत रत्न प्रदान करने की घोषणा कर डाली।

निजी पैसा-प्रतिष्ठा सबसे ऊपर

अपनी प्रतिष्ठा और व्यक्तिगत स्वार्थ को गौण मानकर टीम के लिए जान लड़ा देने वाले खिलाड़ी के रूप में सचिन का जो गुणगान किया जाता है वह तो सरासर झूठा है। शतकों के शतक बनाने के लिए एशिया कप में मंथर गति से उन्होंने रन बनाए, जिसके चलते बांगलादेश की नौसिखिया टीम भारत को परास्त करने में सफल रही और भारत एशिया कप के फाइनल में जाने से वंचित रह गया। लेकिन उनके शतकों का शतक बनाने के व्यक्तिगत स्वार्थ के बारे में किसी टीवी चैनल और क्रिकेट विशेषज्ञों ने कोई कड़ी टिप्पणी करना तो दूर उलटे अभिनंदन किया। बांग्लादेश के खिलाफ मंथर गति से रन बनाने पर क्रिकेट कंट्रोल बार्ड का कर्तव्य बनता था कि वह सचिन से कम से कम जवाब तलब करे और शतकों का शतक बनाने के उनके जश्न मनाने पर आपत्ति करे।

टीम के लिए खेलने के बजाय रेकार्डप्रियता का एक उदाहरण पाकिस्तान के खिलाफ खेले गए एक टेस्ट मैच का है। सचिन जब 194 पर खेल रहे थे तब कप्तान राहुल द्रविड़ ने पारी घोषित कर दी। पारी की घोषणा के पीछे द्रविड़ की दो मंशा थी- **पहली,** पाकिस्तान टीम को यह जताना था कि भारत के लिए सचिन का दोहरा शतक बनाना गौण है, प्रधान है जीतने के लिए कुछ भी उठा न रखना। **दूसरी,** सचिन को 194 से 200 तक पहुंचने में पांच मिनिट से आधा घंटे तक या उससे भी ज्यादा समय लग सकता था सो उस समय को बचाकर दो दिन से फील्डिंग करने से थके दो-तीन पाकिस्तानी बल्लेबाजों को दिन का खेल समाप्त होने तक आउट कर देना। द्रविड़ के पारी की घोषणा पर सचिन कुछ पल ठिठके रहे और बाद में उन्होंने पारी घोषित करने की दबे स्वर में आलोचना भी की। इस घटना से राहुल द्रविड़ और सचिन तेंदुलकर के बीच मनोमालिन्य पैदा होने की खबर अखबारों ने बढ़ा-चढ़ा कर भी छापी। यह तो राहुल द्रविड़ की प्रशंसा करने योग्य बात है कि उन्होंने सचिन से सीधे बातचीत कर मनोमालिन्य को दूर किया।

जब कोई भारतीय क्रिकेट खिलाड़ी भारत के लिए खेलने की और व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को गौण बताने की पाखंड भरी बात कहता है तो यही लगता है कि कोई नरेंद्र मोदी या कोई राहुल गांधी या कोई मुलायम सिंह कह रहा है कि उसके लिए देश का स्वार्थ सर्वोपरि है और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा एकदम गौण। क्रिकेट खिलाड़ी पैसों और व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के लिए ज्यादा खेलते हैं, देश के लिए कम। ऐसे मौके जरूर आते हैं, जब स्वार्थों के समागम से और विपक्षी टीम के प्रति तीव्र शत्रु भाव से टीम का एका बनता है और उसमें जज्बा और जोश पैदा होता है। आईपीएल के मैचों में खिलाड़ियों में जो जज्बा दिखाई देता है वह अन्य मैचों में नहीं, तो उसका कारण एकदम प्रकट है- आईपीएल में पैसा बरसता जो है।

सचिन क्रिकेट के भगवान

बच्चों की पत्रिका 'बच्चों का देश' में सचिन को युगपुरुष से लेकर खेल का गौरव, क्रिकेट का भगवान, एक जीवित इतिहास, भूतो न भविष्यति और कई विशेषणों से विभूषित किया गया है। भूतो न भविष्यति हमें एकदम सटीक लगा तो उसकी वजह यह है कि अतीत में किसी क्रिकेट खिलाड़ी का सचिन जितना गुणगान नहीं हुआ और भविष्य में भी होने की संभावना एकदम क्षीण है। एक कारण तो यह है कि सचिन का जब टेस्ट मैचों में पदार्पण हुआ तब सेटेलाइट टेलीविजन का युग आ गया था। सचिन हमारे घर में घुस आए थे, हमें वे अपने लगते थे और फिर उनका कुछ शिशु सुलभ चेहरा हमें एक प्रकार की मासूमियत का आभास देता था। फिर टेलीविजन पर उनकी बल्लेबाजी और विज्ञापनबाजी का कब्जा इतना ज्यादा था कि वे सर्वत्र विराजमान जान पड़ते थे। जो सर्वत्र विराजमान हो तो वह ईश्वर या भगवान ही हो सकता है।

अपने प्रारंभिक दिनों में सचिन की आतिशी बल्लेबाजी और अब्दुल कादिर जैसे मशहूर गेंदबाज की गेंदों पर 16 वर्ष की उम्र में छक्कों की बौछार

देखने लायक थी। सुनील गावस्कर की सधी बल्लेबाजी, गुंडप्पा विश्वनाथ की विलक्षण और कलात्मक स्क्वायर ड्रायव शाटों, अजहरूद्दीन की कलाई के मोड़ से सीमा पार करती शाटों की तब तक हमें याद नहीं आती थी जब तक सचिन बल्लेबाजी करते थे। लेकिन तैंतीस वर्ष बीत जाने के बाद भी जब गुंडप्पा विश्वनाथ की बल्लेबाजी का स्मरण हो आता है तो लगता है कि नहीं, गुंडप्पा विश्वनाथ की कलात्मक बल्लेबाजी और सचिन की आतिशी बल्लेबाजी के बीच आकाश-पाताल का फरक है। 'वामन' विश्वनाथ अपनी पारी का निर्माण नहीं करते थे वह अपने में एक निर्मित होती थी, उसके पीछे कोई गणित नहीं होता था, जो सचिन की बल्लेबाजी में हमेशा रहा है।

उम्र के साथ सचिन की आतिशी बल्लेबाजी ने संयमित व धीर बल्लेबजी का रूप ले लिया और इस रूप में वे कोई कम बड़े बल्लेबाज नहीं थे लेकिन तब भारतीय टीम में कम से कम द्रविड़ और लक्ष्मण उनके निश्चय ही समकक्ष थे। सचिन की वंदना और महिमा मंडन की प्रतिक्रिया में लिखी गई सुमित चक्रवर्ती की किताब 'मास्टर ब्लास्टर - व्हाट दे डोंट टेल यू अबाउट सचिन तेंदुलकर' (अपने को टिकाए रखने के मास्टर : सचिन तेंदुलकर के बारे में वे बातें जो आपको बताई नहीं जाती) बताती है कि सचिन के भारत महाद्वीप के बाहर बनाए गए 51 शतकों और 67 अर्धशतकों में से एक भी शतक और अर्धशतक (दूसरी पारी में भारी दबाव में खेलते हुए) एक बार भी भारत को जिता नहीं पाया, जबकि लक्ष्मण इस मामले में चार और द्रविड़ तीन बार जीत दिलाने में सफल रहे। सुमित चक्रवर्ती का कहना है कि गावस्कर, सचिन से श्रेष्ठ बल्लेबाज रहे हैं। प्रतिपादन में एकांगिता का अवगुण अक्सर प्रवेश किए बिना नहीं रहता और सुमित चक्रवर्ती कोई अपवाद साबित नहीं हुए हैं। लेकिन सचिन वंदना के ज्वार में उनकी किताब का महत्व सचिन पर लिखी गई अतिरंजित प्रशंसात्मक किताबों से, निश्चय ही ज्यादा है।

क्या भारत रत्न कोका कोला बेचेगा

भारतरत्न हो जाने के बाद भी क्या सचिन हमें कोका कोला पीने को प्रेरित करेंगे ? कोका कोला इंडिया के मार्केटिंग एंवं कम्युनिकेशन डायरेक्टर वसीम बशीर कहते हैं कि ''कोका कोला के प्रति सचिन की वफादारी इतनी है कि उसके इस वर्ष के 'सपोर्ट माई स्कूल' अभियान में हमने दो बार 12 घंटे का टेलीथन कार्यक्रम (शायद इसका अर्थ टेलीविजन के परदे पर कोका कोला की 'उपयोगिता' पर श्रव्य-दृश्य कार्यक्रम) का आयोजन किया। दोनों बार सचिन कार्यक्रमों में शुरु से अंत तक रहे। सचिन की निष्ठा को देखते हुए हम उन्हें 'ब्रांड एंबैसडर' (दूत) नहीं कहते, कहते हैं 'मेसेंजर ऑफ हैप्पीनेस' (सुख संतोष के दूत)।'' जितना हम जानते हैं उसके अनुसार कोका कोला पीने से किसी प्रकार के सुख होने की हमें जानकारी नहीं है। ऐडीडास इंडिया के ब्रांड मैनेजर तुषार गोकुलदास बताते हैं कि जुलाई 2012 में सचिन के साथ ऐडीडास के जर्मनी स्थित प्रधान कार्यालय हेजेगिनाउरुस में उन्होंने दो दिन बिताए, उन्हें वे कभी नहीं भूल सकेंगे। ये तो दो उदाहरण कंपनी प्रमुखों के है, जो हमें अनायास ही उपलब्ध हो गए।

चित्रकार जोगेन चौधरी और सनातन डिंडा भी सचिन पर मुग्ध हैं। उनके चित्र सचिन ने खरीदे हैं। देश के अरबपतियों की तरह सचिन भी कला प्रेमी है। उनके पास मकबूल फिदा हुसैन का चित्र है और कभी कई मशहूर चित्रकारों के होंगे। शायद तैयब मेहता, हैदर रजा और रामकुमार के भी हों। गाड़ियां उनके पास कितनी है, नहीं जानते। एक बीएमडबलू होने का पता है। अखबार में छपा था कि बेटा अर्जुन उसमें बैठकर क्रिकेट कोचिंग सेंटर गया था। एक फेरारी गाड़ी उन्हें भेंट में मिली थी जिस पर उन्होंने सरकार से चुंगी में भारी छूट प्राप्त की थी। अब सुनते हैं कि उसे उन्होंने बेच दिया है।

किसी इंटीरियर डेकोरेशन की सौ-दौ सौ कीमत वाली पत्रिका में शायद उनकी घर की सज्जा का पता चले। सचिन का अब तक अंबानी और मुंबई के धनाढ्यों के बीच उठना-बैठना था। अब क्रिकेट से छुट्टी पाने के बाद शायद राजनीतिक लोगों के बीच उठना-बैठना शुरु हो- किसी इंट्रो की तो उन्हें जरूरत नहीं। वे राज्यसभा के सदस्य तो बन ही चुके हैं।

सचिन की कहानी एक सफल कहलाने वाले व्यक्ति की कहानी है जिसने अपनी लगन से 34 हजार से भी ज्यादा रन बनाए और अपनी कमीज, जूतों, बल्लों पर कंपनियों के छापे लगा कर और कंपनियों के माल का विज्ञापन कर एक हजार करोड़ रूपए कमाए। इन सबसे देश का क्या भला हुआ और क्या कल्याण हुआ कि उन्हें भारत रत्न प्रदान किया गया ?

हिफाजत और हमले के बीच कानून

प्रियदर्शन

महिलाओं पर अत्याचार रोकने के लिए पिछले दिनों कई कानून बने हैं। सुप्रीम कोर्ट की विशाखा गाईड लाईन भी महत्वपूर्ण है। कानून के साथ महिलाओं के प्रति समाज का नजरिया और सोच भी बदलना होगा। इसके लए संघर्ष भी तेज हो रहा है।

प्रियदर्शन वरिष्ठ पत्रकार हैं और एनडीटीवी से संबद्ध है।

पताः
ई-4, जनसत्ता सोसायटी, सेक्टर 9, वसुंधरा, गाजियाबाद (उ.प्र.)

फोनः
09811901398

priyadarshan.parge@gmail.com

पिछले दिनों धर्म, न्याय और अभिव्यक्ति के महत्वपूर्ण पीठों से यौन उत्पीड़न की विचलित कर देने वाली ख़बरें आईं। सबसे पहले आसाराम बापू और उनके बेटे नारायण साईं पर उनके आश्रम में रहने वाली लड़कियों ने बलात्कार के आरोप लगाए। आज की तारीख़ में दोनों बाप-बेटे जेल में हैं। उसके बाद सुप्रीम कोर्ट के एक पूर्व न्यायाधीश जस्टिस ए के गांगुली पर उनके साथ काम कर रही इंटर्न ने यौन उत्पीड़न का आरोप लगाया। सुप्रीम कोर्ट ने एक जांच कमेटी बिठाई जिसने माना कि जस्टिस गांगुली अशालीन यौन व्यवहार के दोषी हैं। तीसरी खबर मीडिया की दुनिया से आई, जब तहलका जैसी सम्मानित पत्रिका के संपादक तरुण तेजपाल को अपने साथ काम कर रही एक पत्रकार पर यौन हमले के आरोप में जेल जाने की नौबत आई।

इन सारे ताकतवर लोगों पर कार्रवाई इसलिए संभव हुई कि हाल के वर्षों में महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों के खिलाफ कई सख्त कानून बने हैं। लेकिन सवाल है, इन कानूनों के रहते इन ताकतवर लोगों ने ऐसे उत्पीड़न की हिम्मत कैसे दिखाई ? इसलिए कि हमारे पास कानून तो हैं, लेकिन बहुत सारे लोगों को या तो उनकी जानकारी नहीं है या फिर वे उनकी परवाह नहीं करते या फिर वे इतने संवेदनशील नहीं हैं कि इन कानूनों पर अमल का इंतजाम करें।

दरअसल संकट यही है। भारतीय समाज के सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की उपस्थिति बढ़ी जरूर है, लेकिन उनके प्रति नजरिया बहुत बदला नहीं है। वे अपने कामकाज में चाहे जितनी भी अच्छी हों, चाहे जितनी भी पढ़ी-लिखी या सुसंस्कृत हों, अपने पुरुष सहकर्मियों से बेहतर भी हों, लेकिन दो धारणाएं उनको लेकर सक्रिय दिखाई पड़ती हैं। पहली धारणा यह है कि बाहर निकलने के बावजूद लड़कियां मानसिक और जिस्मानी रूप से कमजोर हैं, वे ज्यादा बौद्धिक या भावनात्मक दबाव नहीं झेल सकतीं और उन्हें वश में किया जा सकता है। इसके समानांतर एक दूसरी धारणा यह है कि जो लड़कियां नौकरी या कारोबार के क्षेत्र में आ रही हैं, वे ऐसी 'खुली' लड़कियां हैं जो किसी भी तरह के 'यौन आमंत्रण' या 'यौन अपेक्षा' के लिए सुलभ हैं।

जीवन के सार्वजनिक परिसरों में ये धारणाएं अक्सर महिलाओं के प्रति पुरुष का दृष्टिकोण और व्यवहार तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। या तो वे उनकी हिफाजत करना चाहते हैं या उन पर हमला करना चाहते हैं- और अक्सर हिफाजत करते-करते वे हमला करने का विशेषाधिकार अपने साथ लिए चलते हैं। लेकिन नौकरी, रोजगार या किसी और ढंग से सार्वजनिक जीवन में रमी हुई महिलाएं अब न हिफाजत चाहती हैं न हमला झेलने को तैयार हैं। उल्टे, अपने कार्यस्थलों के अनुभव उन्हें बताते हैं कि उन्हें अतिरिक्त सतर्क रहने की जरूरत है क्योंकि यहां हाफिज और हमलावर दोनों एक हैं। वे बिल्कुल बराबरी पर काम कर रही हैं और अपने विरुद्ध हो रहे हमलों का प्रतिकार भी कर रही हैं। प्रतिकार के इस सिलसिले का ही असर है कि सुप्रीम कोर्ट और संसद ने

महिलाओं की सुरक्षा के कानूनी प्रावधानों को मजबूती दी है।

इस सिलसिले में सुप्रीम कोर्ट की विशाखा निर्देशिकाएं और महिलाओं से जुड़े कई कानून बहुत महत्वपूर्ण हैं। 1997 में राजस्थान में बाल विवाह रोकने की कोशिश कर रही एक सामाजिक कार्यकर्ता भंवरी देवी से हुए सामूहिक बलात्कार के बाद विशाखा और कई दूसरे जनसंगठनों ने सुप्रीम कोर्ट में एक जनहित याचिका दायर कर कार्यस्थलों में महिलाओं की सुरक्षा का सवाल उठाया। अदालत ने अपने फैसले में माना कि लैंगिक बराबरी की दिशा में ऐसे प्रावधान जरूरी हैं। इसके बाद अंतरराष्ट्रीय मानकों और समझौतों को ध्यान में रखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने यौन उत्पीड़न की परिभाषा भी तय की और कार्यस्थलों में यौन उत्पीड़न की शिकायतों से निबटने के लिए तरीके भी तय किए। भारत में पहली बार यौन उत्पीड़न को व्यापक तौर पर परिभाषित किया।

1998 में जारी सुप्रीम कोर्ट की इन विशाखा निर्देशिकाओं के तहत यौन उत्पीड़न के दायरे में अशालीन मौखिक या सांकेतिक यौन-व्यवहार, आपत्तिजनक प्रस्ताव या स्पर्श, यहां तक कि महिलाओं के लिए असुविधाजनक लगने वाली बातचीत तक को शामिल किया गया। इन निर्देशिकाओं में साफ कहा गया कि कोई भी ऐसा व्यवहार या इशारा जो किसी महिला के लिए कार्यस्थल में शत्रुतापूर्ण माहौल बनाता है, यौन उत्पीड़न के दायरे में आएगा। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा कि यौन-उत्पीड़न रोकने की जिम्मेदारी नौकरी या रोजगार देने वाले पर है और इसलिए सभी दफ्तरों में यौन उत्पीड़न की शिकायतों से निबटने के लिए एक शिकायत कमेटी होगी जिसकी प्रमुख कोई महिला होगी और जिसमें कम से कम आधी महिलाएं होंगी।

इन सिफारिशों के बरसों बाद 2013 में लोकसभा ने यौन उत्पीड़न कानून पास किया जिसमें विशाखा गाइड लाइंस को और भी ज्यादा व्यापक रूप दिया गया। कार्यस्थल की परिभाषा में सिर्फ दफ्तर नहीं, उन सारी जगहों को जोड़ दिया गया, जहां दफ्तर के काम से किसी महिला को जाना पड़ता हो। विशाखा निर्देशिकाओं के मुताबिक यहां भी दफ्तरों में यौन उत्पीड़न शिकायत कमेटी को अनिवार्य बनाया गया और यह प्रावधान किया गया कि शिकायतकर्ता को आरोप साबित करने की जरूरत नहीं है, बल्कि जिस पर आरोप लगे हैं, उसे यह साबित करना है कि वह बेगुनाह है।

इस कानून के अलावा कम से कम दो और कानून हैं जो महिलाओं को घर और बाहर की दुनिया में सुरक्षा मुहैया कराते हैं। इसी साल महिला अपराधों की रोकथाम के लिए पारित किए गए कानून का दायरा काफी व्यापक कर दिया गया है। अब पहले की तरह छेड़खानी या बलात्कार के लिए अलग-अलग कानून नहीं हैं, बल्कि यौन हमले का एक ही कानून है जिसकी अलग-अलग धाराएं घूरने से लेकर अश्लील टिप्पणी करने और बलात्कार तक से जुड़ी हैं। इसके अलावा 2005 में पारित घरेलू हिंसा विधेयक भी अपने-आप में एक बड़ी पहल है जो घर की चारदीवारी के भीतर महिलाओं पर हो रही हिंसा को दंडनीय बनाती है।

या तो वे उनकी हिफाजत करना चाहते हैं या उन पर हमला करना चाहते हैं- और अक्सर हिफाजत करते-करते वे हमला करने का विशेषाधिकार अपने साथ लिए चलते हैं। लेकिन नौकरी, रोजगार या किसी और ढंग से सार्वजनिक जीवन में रमी हुई महिलाएं अब न हिफाजत चाहती हैं न हमला झेलने को तैयार हैं। उल्टे, अपने कार्यस्थलों के अनुभव उन्हें बताते हैं कि उन्हें अतिरिक्त सतर्क रहने की जरूरत है क्योंकि यहां हाफिज और हमलावर दोनों एक हैं।

सवाल फिर वहीं आकर टिकता है। इतने सारे कानून होते हुए भी महिलाएं सुरक्षित क्यों नहीं हैं? क्योंकि ये कानून जिस समाज को लागू करने हैं, वह पुरुष प्रधान है और अब तक मर्दवादी सोच से संचालित है। 1998 में आ गई सुप्रीम कोर्ट की निर्देशिकाओं के बावजूद खुद सुप्रीम कोर्ट में एक यौन उत्पीड़न शिकायत कमेटी बनाने में 16 साल लग गए। जब एक प्रशिक्षु ने सुप्रीम कोर्ट के पूर्व जस्टिस एके गांगुली पर यौन उत्पीड़न का आरोप लगाया तो वहां ऐसी कोई कमेटी नहीं थी जो इसकी जांच कर सके। शुक्र है कि मुख्य

न्यायाधीश पी. सदाशिवम ने अपनी पहल पर कमेटी बनाई जिसकी रिपोर्ट बताती है कि जस्टिस गांगुली अशालीन यौन व्यवहार के दोषी हैं। इसी तरह 'तहलका' जैसी प्रगतिशील पत्रिका में भी अगर ऐसी कमेटी होती तो तरुण तेजपाल का संकट तहलका के संकट में नहीं बदलता।

बहरहाल, इन मामलों के सामने आने के बाद से महिलाओं के भीतर जागरूकता भी बढ़ी है जिसका नतीजा ये है कि अलग-अलग दफ्तरों में यौन उत्पीड़न की शिकायतें पहले के मुकाबले ज्यादा खुलकर रखी जा रही हैं। इन दिनों एक तर्क यह दिख रहा है कि इन कानूनों पर अमल से पुरुष डरेंगे और महिलाओं की नियुक्ति से बचेंगे जो अंततः महिलाओं के खिलाफ ही जाएगा। लेकिन सच यह है कि यह बहुत एकांगी तर्क है और अगर कुछ हद तक इससे पैदा होने वाला अंदेशा वास्तविक भी है तो इतना खतरा उठाने से महिलाएं डरेंगी नहीं। अपनी बराबरी का रास्ता उन्होंने अपने संघर्ष से बनाया है, उन्होंने अपने पुराने डरों पर जीत पाई है। उन्होंने पुरुषों को समझाना शुरू किया है कि वे उन्हें सहकर्मी ही समझें, यौन वस्तु नहीं। उन्हें यह अंदेशा और कमजोर नहीं कर पाएगा कि वे समाज या दफ्तर में अलग-थलग पड़ जाएंगी।

वार्ता यहां से प्राप्त करें

- सोमनाथ त्रिपाठी, अनुसंधान परिसर, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी – 221002, फोन 09415222940
- विश्वनाथ बागी, पुटकी कोलियरी, पो. कुसुंडा, जिला धनबाद, झारखंड 828116, फोन 09835131638
- लिंगराज, समता भवन, बरगढ़, ओडिशा, 768028, फोन 09437056029
- जे. पी. सिंह, जेपी मेडिकल, बेलथरा रोड, जिला बलिया, उत्तरप्रदेश फोन 09454246891
- अच्युतानंद किशोर नवीन, सत्य साहित्य, कन्हौली, शारदानगर, पो. आर के आश्रम बेला, मुजफ्फरपुर, बिहार, 843116, फोन 09470268745
- नवल किशोर प्रसाद, एडवोकेट, छोटा बरियापुर, वार्ड नं 38, पो. सिविल कोर्ट, थाना छतौनी, मोतीहारी, बिहार 845401, फोन 08271829617
- चंद्र भूषण चौधरी, भारती अस्पताल, कोकर चौक, हजारीबाग रोड, रांची, झारखंड 834001, फोन 09006771916
- रामजनम, सर्वोदय साहित्य भंडार, प्लेटफार्म नं. 4, वाराणसी कैंट स्टेशन, वाराणसी 221002, फोन 08765619982
- अमरेंद्र श्रीवास्तव, पुरानी गुदड़ी, वार्ड नं. 9, थाना–नगर, पो. बेतिया, बिहार 845438, फोन 09031670370
- चंचल मुखर्जी, मुखर्जी बुक डिपो, पांडे हवेली, वाराणसी, फोन 0542–2454257
- शिवजी सिंह, अधिवक्ता, महद्दीगंज, बलुआ टोला, पो. सासाराम, जिला रोहतास, बिहार 821115, फोन 09431846052
- रमाकांत वर्मा, सेक्टर 3 डी, क्वा नं.589, बोकारो स्टील सिटी, झारखंड 827003
- अल्मोड़ा किताबघर, मित्रभवन, गांधी मार्ग, अल्मोड़ा, उत्तराखंड 263601 फोन 09412092061
- दिनेश शर्मा, डी 68, ए ब्लाक, खूंटाडीह, सोनानी, जमशेदपुर, झारखंड 831011, फोन 09431703559
- इकबाल अभिमन्यु, 28 पेरियार छात्रावास, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली 110067, फोन 09013183889
- मनोज वर्मा, इहमी कंपाउंड, पो.रामनगर, जिला पश्चिमी चंपारन, बिहार 845106
- राजेंद्र बिंदल, 252 ई, पाकेट डी, दिलशाद गार्डन, दिल्ली, 110095 फोन 09266955416
- रोशनाई प्रकाशन, 212 सी. एल/ए., अशोक मित्र रोड, कांचरापाड़ा, उत्तर 24 परगना, प.बंगाल, 743145 फोन 033–25850249
- गोपाल राठी, सांडिया रोड, पिपरिया, जिला होशंगाबाद, म.प्र. फोन 09425408801
- तपन भट्टाचार्य, 201, सुशीला कांप्लेक्स, 130, देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर– 452003 फोन–09826011413

किस्सा

मोहब्बत में ब्राह्मण से बना डोम

कविता आर्य

प्यार में दीवानगी के कई किस्से मशहूर हैं। लेकिन बिहार के भोजपुर जिले का यह सच्चा किस्सा अनूठा है, जिसमें ब्राह्मण युवक ने डोम बनना और डोम जाति के सारे रिवाजों व परंपराओं को अपनाना कबूल किया। जाति और ऊंच-नीच की बेड़ियां टूट गईं।

जातीय सीढ़ियों में बंटे भारतीय समाज में हर व्यक्ति नीचे से ऊपर चढ़ना चाहता है। ब्राह्मण होने के लिए क्षत्रिय विश्वामित्र ने सदियों तपस्या की। लेकिन एक व्यक्ति ऐसा भी हुआ जिसने अपने प्यार को पाने के लिए ब्राह्मणत्व छोड़कर सामाजिक पायदान के सबसे नीचे खड़ी डोम जाति में खुद को शामिल कर लिया। मड़ई दुबे की कहानी रूढ़ियों से जकड़े समाज में एक अदभुत मिसाल है।

हम सब के पास हजारों ऐसी कहानियां है जिसमें प्रेमी या प्रेमिका अपने प्यार को पाने के लिए जुनून की हद तक गुजर जाते हैं। आजकल टीवी के बिंदास चैनल ने भी युवा प्रेमियों को प्रभावित करने का एक सीरियल ''ये है आशिकी'' शुरू किया है, जो बेहद लोकप्रिय हो रहा है। पर कोई भी कहानी मड़ई दुबे या मड़ई डोम के अमर प्रेम के बराबर नही हैं।

मड़ई दुबे कट्टर ब्राह्मण परिवार में बिहार के भोजपुर जिले के सलेमपुर गांव में हुए थे। उनके पास गांव के बाहर खेती के लिए खूब जमीनें थी जिसमें मड़ई अपना समय देते थे। वही खेत के पास श्मशान घाट भी था जहां सुगमोना के पिता अपना अंतिम क्रियाकर्म का काम करते थे। अपने पिता के लिए खाना लेकर सुगमोना हर रोज वहां जाया करती थी। चूंकि मड़ई व सुगमोना दोनों ही दो विपरीत जातियों व वर्णों के थे इसलिए उनमें किसी भी प्रकार का बात-व्यवहार नहीं था। एक दिन रोज की तरह सुगमोना जब दोपहर का खाना लेकर जा रही थी तो बहुत तेज गर्मी की वजह से मड़ई के खेत में बेहोश होकर गिर गई। उसे बेहोश देखकर लोक परंपरा की परवाह किए बिना मड़ई ने उसे अपनी झोपड़ी की छाया में उठाके लेटा दिया तथा पानी पिलाकर उसकी आत्मरक्षा की। यह वाकया दोनों की जिंदगी का सबसे अहम मोड़ बन गया और दोनों एक दूसरे के प्यार में इस कदर डूब गए कि अब उनका अलग होना असंभव था। दोनों का प्यार हीर-रांझा व सोहनी-महिवाल की तरह चारों तरफ चर्चा का विषय बन गया। आज से लगभग सौ वर्ष पहले जब समाज और भी बुरी तरह जाति-पांति, ऊंच-नीच के क्रूर पंजों में बुरी तरह से जकड़ा हुआ था, तब ये दोनों प्रेमी बिना किसी बात की परवाह किए एक दूसरे के प्रेम में डूब गए।

प्यार के दुश्मन तो हर समय व हर जगह होते हैं, सो इनके विचित्र प्रेम के खिलाफ पूरा घर, परिवार व समाज उठ खड़ा हुआ। गांव के ब्राह्मण समुदाय ने इसकी कड़ी निंदा की। उनके लिए यह बात हजम करना मुश्किल ही नहीं असंभव भी था कि एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल का लड़का नीच मानी जाने वाली जाति की लड़की से प्यार या विवाह बंधन में बंधे। अत: उन्होंने मड़ई के परिवार वालों को खास चेतावनी दी कि अपने बेटे को ऐसा करने से रोके अन्यथा पूरा समाज उनके परिवार को समाज से बाहर कर देगा। मड़ई के परिवार ने मड़ई को चेतावनी दी कि ऐसा न करें अन्यथा वह मड़ई को न सिर्फ घर से निकाल देंगे बल्कि जमीन जायदाद से भी हमेशा के लिए बेदखल कर देंगे। पर प्यार का जुनून जिसपे चढ़ता है वही जानता है कि ये क्या है। मड़ई को क्या करना था इस धन, दौलत, जात-पांत का। उसे तो उससे भी कीमती चीज मिल गई

डा.कविता आर्य अंगरेजी की प्रोफेसर हैं।

पता:
आर्य महिला पीजी कालेज, चेतगंज, वाराणसी-221101

kvtarya
@gmail.com

थी। उस समय जब ऊंची जात के पुरूष नीची मानी जाने वाली जात की लड़कियों को रखैल की तरह रख सकते थे, पर शादी, वो भी एक डोम जाति की लड़की से, असंभव थी। मड़ई के घर वालों ने उसकी जिद के चलते उसे घर से बाहर निकाल दिया, पर मड़ई अपने इरादे से टस से मस तक नहीं हुए। यह तो कहानी का एक भाग है। दूसरा भाग तो बेहद कठिन व चुनौतीपूर्ण है।

सुगमोना के लिए तो मड़ई उन लोगों से अलग थे जो नीच जाति की लड़कियों को भोग विलास की वस्तु मानते थे, जो उनकी वासना पूरी करने पर बेकार हो जाया करती थी। ब्राह्मण जाति में जन्म लेने के बावजूद उसमें वो हिम्मत थी कि वो डोम जाति की लड़की को अपना जीवन साथी बना सके। मड़ई इस इरादे से सुगमोना के पिता से मिले, तो इसे महज उम्र का तकाजा मानकर उन्होंने इनकार कर दिया। उनके लिए यह सोच से परे था कि कैसे किसी ऊंचे ब्राह्मण कुल का लड़का उनकी (डोम) जाति में विवाह कर सकता है। ऐसा तो उन्होंने न कभी पहले सुना था, न देखा था। उन्होंने तो पूरी जिंदगी यही देखा और सुना था कि कैसे नीची जाति की लड़कियां ऊंचे कुल के मर्दों की देह की जरूरत को पूरा करने का साधन बनती हैं। सुगमोना से विवाह के पक्के इरादे को देख उनके पिता ने मड़ई से कहा ''सुगमोना डोम जाति में पली-बढ़ी है। डोम जाति की परंपरा ब्राह्मण जाति से बिल्कुल ही अलग है। वह मांस-मछली खाती है तथा सुअर पालती है। तुम कैसे उसके साथ रह पाओगे ? क्या तुम डोम जाति को अपना सकोगे ?''

मड़ई ने दृढ़ता से उत्तर दिया-बिल्कुल।

सारी डोम जाति भी इस विवाह के खिलाफ थी। उनके लिए इस बात पर विश्वास कर पाना असंभव था। डोम जाति के बड़े बुजुर्गों ने सुगमोना का हाथ मड़ई को इसी शर्त पर देने का वादा किया जबकि वह निम्नलिखित शर्तों को पूरा करके खुद भी डोम जाति को अपनाए-

1. मांसाहारी भोजन, सुअर का मांस खाना होगा।
2. शराब का सेवन करना होगा।
3. डोम जाति की ही तरह श्मशान घाट में अंतिम संस्कार कराना एक पेशे की तरह अपनाना होगा।
4. गांव में भीख मांगनी पड़ेगी।
5. डोम जाति की महिलाओं द्वारा नहाए गंदे पानी को पीना पड़ेगा।
6. डोम जाति का मुख्य व्यवसाय बांस काटना तथा सुअर पालने का काम करना होगा।

मड़ई ने एक कट्टर ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया था जिन्होंने कभी मांसाहार भोजन व शराब को ग्रहण नहीं किया था। गंदे पानी तथा मरे शरीर से एक स्वाभाविक घृणा उन्हें होती थी। वो सब आज अपने प्यार के लिए करना होगा। मड़ई के लिए उसकी प्रेमिका सुगमोना और उसका प्यार इन सब चीजों से काफी ऊपर था। अत: उसने इन शर्तों को खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया। इन सब शर्तों को पूरा करने के बाद वो हमेशा-हमेशा के लिए एक दूसरे से विवाह के पवित्र बंधन में बंध गए। अब वह मड़ई दुबे से मड़ई डोम हो गए। दोनों अपने शहर सलेमपुर को हमेशा के लिए छोड़कर उसी जिले के दूसरे गांव गजराजगंज में रहने लगे, क्योंकि ब्राह्मण समाज के लिए मड़ई सिर्फ एक कलंक थे जिसे वह कभी माफ नहीं कर पाए। सारी जिंदगी वो डोम टोली में बिना किसी पश्चाताप के गुजारें। जब कभी कोई उन्हें मड़ई दुबे से संबोधित करता तो बड़ी ही विनम्रता से वो जवाब देते ''ना हुजूर, अब हम मड़ई दुबे नइखी, अब हम मड़ई डोम बानी''।

एक ब्रिटेन के राजा ने अपनी गद्दी एक आम लड़की के लिए छोड़ दी, मुगल शासक शाहजहां ने अपनी प्रेमिका मुमताज के लिए ताजमहल बनवाया। कइयों ने अपनी प्रेमिका के लिए प्यार के नगमे लिखे व गाए तो कइयों ने अपनी जिंदगी भी अपने प्यार के लिए न्यौछावर कर दी। पर मड़ई दुबे का त्याग अलग ही है। उसने अपनी परंपरा, अहम, जाति और अपनी पहचान को अपने प्यार के लिए पूरी तरह स्वाहा कर दिया। शायद लोगों के लिए यह विश्वास करना संभव न हो, पर ये किसी मनगढ़ंत प्रेम कहानी की किताब का हिस्सा नहीं है। ये तो सच्ची कहानी है जिसे किसी ने कभी जिया था। मड़ई वो साहसी नायक था जिसने उस समय अपने परिवार, समाज व जाति के खिलाफ खड़ा होने का साहस तब किया जब देश में जाति-पांति की दीवार और भी मजबूत हुआ करती थी। वह अपने समय और काल दोनों से परे थे। लगभग 1965 के करीब उनका देहांत हो गया। आज भी इनके वंशज छोटकी सहसाराम नामक गांव में रहते हैं। इस महान प्रेम की याद में कोई भी स्मारक वहां नही हैं।

काश! मड़ई जैसे लोग हर घर, शहर व प्रदेश में हो जाए तो ये जात-पांत, ऊंच-नीच का भेदभाव हमेशा के लिए भारत से मिट जाए।

मुफ्त दवा की राजस्थानी योजना

नरेन्द्र गुप्ता

चित्तौड़गढ़ से शुरु हुई सस्ती जेनेरिक दवा योजना राजस्थान के स्तर पर मुफ्त दवा और जांच की योजना में बदल गई। इससे सरकारी अस्पतालों में रोगियों की संख्या दुगनी हो गई। इसकी जानकारी देता और पड़ताल करता लेख।

डा. नरेन्द्र गुप्ता चित्तौड़गढ़ की प्रयास संस्था के समन्वयक हैं और जन स्वास्थ्य अभियान, राजस्थान से जुड़े हैं।

पताः
प्रयास, 8, विजय कालोनी, चित्तौड़गढ़(राज)-312001

फोनः
09414110328

narendra
@prayaschittor.org

राजस्थान सरकार द्वारा गांधी जयंती 2 अक्टूबर 2011 से निशुल्क दवा और 15 अगस्त 2013 से राज्य के समस्त नागरिकों के लिए सभी सरकारी चिकित्सा संस्थानों में नि:शुल्क जांच योजना प्रारम्भ की गई है। योजना के प्रारम्भ होते ही सरकारी चिकित्सालयों में रोगियों की उपचार के लिए संख्या बढ़ने लगी है। अनेक रोगी जो जेब में दवा खरीदने के लिए रूपए नहीं होने के कारण उपचार नहीं करवा पाते थे या बाजार में दवाइयां महंगी होने के कारण अप्रशिक्षित या झोलाछाप डाक्टरों से उधार में इलाज करवाते थे, अब सरकारी चिकित्सालयों में आने लगे।

इन योजनाओं के प्रारंभ होने के दो वर्षों में सरकारी चिकित्सालयों में उपचार कराने वाले रोगियों की संख्या पिछले वर्षों की तुलना में दोगुनी हो गई है। इतनी संख्या में उपचार के लिए रोगियों का बढ़ना यह सिद्ध करता है कि दवाइयों का नि:शुल्क उपलब्ध होना उपचार के लिए कितना महत्वपूर्ण है। चिकित्सा सेवा प्राप्त करने में व्यय का लगभग 70 प्रतिशत रोगी के परिवार को जेब से खर्च करना होता है जो कि विश्व के अत्यंत निर्धन राष्ट्रों की तुलना में सबसे अधिक है। सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि भारत में एक बार चिकित्सा के लिए भर्ती होने पर लगभग 40 प्रतिशत रोगी अधिक निर्धन होकर निर्धनता की रेखा के नीचे चले जाते हैं और उससे उबर नहीं पाते हैं। रोग उपचार में जो 70 प्रतिशत राशि जेब से व्यय करनी होती है उसका लगभग 70 प्रतिशत दवाइयों में व्यय होता है जो कि वास्तव में बहुत बड़ी राशि होती है। लगभग 27 प्रतिशत रोगी अपना उपचार केवल यह राशि नहीं होने के कारण नहीं करवाते हैं। आवश्यक औषधियों की नि:शुल्क उपलब्धता निश्चित रूप से नागरिकों को स्वास्थ्य सेवा की उपलब्धता केा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण है।

राजस्थान सरकार ने वर्ष 2011-12 में नि:शुल्क दवा योजना के लिए 200 करोड़ का प्रावधान किया जिसे वित्त वर्ष 2012-13 में बढ़ाकर 300 करोड़ कर दिया। राजस्थान में जब दवाओं का व्यापार लगभग 6000 करोड़ के ऊपर का हो तो क्या 300 करोड़ की दवाओं से सभी तरह के रोगों के लिए आवश्यक दवाइयां उपलब्ध करवाई जा सकती हैं ? यह सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न सबके समक्ष था ?

इसके पूर्व सन् 2009-10 में चित्तौड़गढ़ जिला प्रशासन ने एक अभिनव पहल कर जिले के रोगियों को अत्यन्त कम लागत पर दवा उपलब्ध करवाने का निश्चय किया। इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका जिले के तत्कालीन कलेक्टर डॉ. समित शर्मा की थी, जो कि स्वयं एक बाल रोग चिकित्सक रह चुके थे। इस योजना को प्रारंभ करने के लिए जिले के सरकारी चिकित्सकों में से सभी तरह के विशेषज्ञों की एक समिति बनायी गई और आग्रह किया गया कि समिति उन सभी दवाओं की सूची बना ले जिनका जिला स्तर तक होने वाले समस्त प्रकार के रोगों का उपचार के लिए उपयोग किया जाता है। इसके बाद जिले के समस्त चिकित्सकों के साथ बैठक का आयोजन कर बनाई गई दवा सूची पर उनकी सहमति

प्राप्त की गई कि यह सूची संपूर्ण है। यह भी सहमति ली गई कि जो दवाएं रोगियों को उपचार के लिए लिखी जाती हैं अगर उसी कंपनी की अथवा उसके समकक्ष कंपनी को दवा का जेनेरिक संस्करण का उपयोग हो तो उनको कोई आपत्ति नहीं है। सभी ने सहमति दी एवं आश्वस्त किया कि वे रोगियों को दवा लिखते समय दवा के जेनेरिक नाम का उपयोग करेंगे, कंपनियों द्वारा दिए गए ब्रांड नामों का नहीं।

इसी सहमति के साथ जिला प्रशासन द्वारा संकलित की गई दवा सूची अनुसार दवा बनाने वाली कंपनियों से संपर्क किया गया। सर्वप्रथम चिकित्सकों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली कंपनियों और क्षेत्रीय भंडारकर्ताओं से संपर्क कर उन दवाओं की मूल्य सूची मांगी गई। भण्डारकर्ताओं द्वारा दवाओं की जो ऑफर सूची उपलब्ध करवाई वह चौंकाने वाली थी। उदाहरण के रूप में 400 मि.ग्रा. की एल्प्राजोलम गोली जिसका उपयोग उदासीनता, उत्तेजना इत्यादि को कम करने के लिए किया जाता है की बाजार में 14 रूपये की 10 गोली को मात्र 1.20 रु. में देने का आफर हुआ। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की दवाओं की कीमतों में बाजार और थोक विक्रेता द्वारा आफर किए गए मूल्यों में 5 से 3000 प्रतिशत तक का अंतर पाया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि रोगी जब निजी स्तर पर बाजार से दवा क्रय करता है तो यह राशि उसके थोक मूल्यों से 3000 प्रतिशत तक अधिक हो सकती है।

एक अन्य उदाहरण के अनुसार एट्रोवेस्टटीन नामक दवाई हृदय रोग से ग्रस्त रोगियों को खून पतला करने के लिए प्रतिदिन 1 गोली लेनी होती है। बाजार में 20 मि.ग्रा. गोली का मूल्य 15 रूपए है जो कि थोक विक्रेताओं द्वारा डेढ़ रु. में उपलब्ध करवाने की पेशकश की गई। इस लॉजिक को आधार बनाकर चित्तौड़गढ़ सहकारी भंडार के माध्यम से दवा विक्रय केन्द्र स्थापित किए गए और उनके माध्यम से थोक विक्रेताओं से उनके आफर मूल्यों से भी कम मूल्य पर दवाइयों की खरीदी (चिकित्सकों की समिति द्वारा बनाई गई सूची अनुसार) की गई। इन विक्रय केन्द्रों से सभी दवाएं क्रय मूल्य पर 20 प्रतिशत लाभ के साथ

चित्तौड़गढ़ सहकारी उपभोक्ता भंडार में मिलने वाली जेनेरिक दवाओं की कीमतें

क्र.सं.	दवा का जेनेरिक नाम	मात्रा	चित्तौड़गढ़ टेंडर मूल्य	दवा पैकेट पर अंकित अधिकतम खुदरा मूल्य
1.	एलबेन्डाजोल टेबलेट	10 गोली	11.00	250.00
2.	अल्प्राजोलम	10 गोली	1.40	14.00
3.	आर्टिथर	10 गोली	9.39	99.00
4.	अम्लोडीपीन	10 गोली	2.50	22.00
5.	से ट्रीजीन	10 गोली	1.20	35.00
6.	केफ्टाजिडीम	1 इंजेक्शन	52.00	370.00
7.	एट्रोवेस्टेटिन	10 गोली	18.10	170.00
8.	डाइक्लोफेनेक	10 गोली	2.20	25.00
9.	डाएजेपाम	10 गोली	1.90	29.40
10.	अमिकासिन 500 मि.ग्रा.	1 इंजेक्शन	6.95	70.00

नोटः इन तालिकाओं में दवाइयों की थोक और खुदरा कीमतों में जो विशाल अंतर दिखाई दे रहा है, वह वास्तविक है। पाठकगण इसे टाइपिंग या प्रूफ की गलती न मानें।

विक्रय की जाने लगी। 20 प्रतिशत लाभ किसी भी व्यापार में बहुत अच्छा लाभ माना जाता है। इस प्रकार ये दवा विक्रय केन्द्र पूर्ण रूप से स्वावलंबन के साथ दवा विक्रय करते रहे।

चिकित्सक प्रारंभ में तो जेनेरिक दवाओं को रोगियों को उपचार हेतु लिखते रहे पर उनको यह व्यवस्था इसलिए रास नहीं आ रही थी कि जेनेरिक दवाएं लिखने के कारण एक तो दवा निर्माता कंपनियों के प्रतिनिधियों का उनसे आकर मिलना बंद होने लगा और जो उपहार मिलते थे वे भी बंद हो गए। इसके अतिरिक्त उपचार कराने वाले रोगियों की संख्या में और अधिक बढ़ोत्तरी हो गई। कुछ चिकित्सकों को लगा कि इस योजना के लागू होने से उनकी दवा के बारे में रोगी को सलाह देने की स्वतंत्रता समाप्त हो गई। जबकि वास्तविकता यह थी कि जो दवाएं भंडार के माध्यम से विक्रय की जा रही थी उनकी पूरी सूची चिकित्सकों की समिति ने ही सभी चिकित्सकों की सलाह पर बनाई थी। अनेक बार जांच करने पर पाया कि अनेक चिकित्सक उनके द्वारा बनाई गई कार्य योजना में ही सेंध लगा रहे हैं और जो रोगी उपचार के लिए आ रहे हैं उनको भंडार से उपलब्ध होने वाली औषधियों की गुणवत्ता के बारे में गुमराह कर रहे हैं। विभिन्न विपरीत परिस्थितियों के उपरांत भी यह परियोजना आशातीत सफलता के साथ प्रारंभ रही। इसका सबसे व्यवस्थित साक्ष्य यह था कि जिले के अधिकतर कार्यरत एवं सेवानिवृत सरकारी कर्मचारी एवं उनके परिवार जिनको कि चिकित्सा हेतु स्वयं कुछ व्यय नहीं करना होता ने भी सहर्ष भंडार से उपलब्ध जेनेरिक दवाइयों का उपयोग स्वीकार किया। रोगी जिनको जीवपर्यंत चलने वाले रोग जैसे उच्च रक्तचाप, मधुमेह जिनको प्रतिदिन दवाइयों का सेवन करना होता है ने भी इनका उपयोग कर किसी भी प्रकार की कोई शिकायत नहीं की। इस प्रकार चित्तौड़गढ़ जिले में मात्र 10 माह में राज्य सरकार के सेवानिवृत कार्मिक पेंशन फंड में पिछले वर्ष की तुलना में 32 लाख रूपए की बचत हुई।

परियोजना के दीर्घकालिक रूप से संचालन में अनेक कठिनाइयां थी। सर्वप्रथम तो इस परियोजना के लिए राज्य अथवा केन्द्र सरकार से कोई सैद्धांतिक अथवा संस्थागत स्वीकृति नहीं थी। दूसरा इसके लिए कोई संस्थागत अन्य आवश्यकता जैसे भंडार कक्ष इत्यादि की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। सबसे अधिक समस्या चिकित्सकों को जैनेरिक दवा की ही सेवन सलाह के लिए प्रतिबद्ध रखने की थी। अत: यह योजना जब तक डॉ. समित शर्मा चित्तौड़गढ़ में कलेक्टर पद पर रहे

दवाईयों के दामों की लूट

दवा निर्माता कंपनी	कंपनी द्वारा दिया गया ब्रांड नाम	दवा का जेनेरिक नाम	मूल्य जिस पर विक्रेता ने दवा को खरीदा है	मूल्य जिस पर दवा विक्रेता ग्राहक को दवा बेच रहा है। (अंकित अधिकतम खुदरा मूल्य)
केडिला	एमिस्टार 500	अमिकासिन 500 मि.ग्रा.	8.00	70.00
जर्मन रेमेडीज	एमी 500	अमिकासिन 500 मि.ग्रा.	8.00	70.00
वोकाहार्ट	जेकसिन 500	अमिकासिन 500 मि.ग्रा.	9.90	70.00
एल्मेबिक	एमिकानेक्स 500	अमिकासिन 500 मि.ग्रा.	8.22	64.25
इंटाज	काली 500	अमिकासिन 500 मि.ग्रा.	8.13	60.00
यूनीकेम	उनिमिका500	अमिकासिन 500 मि.ग्रा.	7.80	70.00
रेनबेक्सी	एल्फाकिम500	अमिकासिन 500 मि.ग्रा.	8.50	70.00
किओला	एमिको 500	अमिकासिन 500 मि.ग्रा.	7.42	72.00

व्यवस्थित रूप से चलती रही ।

राजस्थान के अनेक नागरिक संगठन 2009 से ही राज्य में सभी रोगियों के लिए नि:शुल्क दवा उपलब्धता के लिए संघर्षरत रहे हैं। इस अभियान के अन्तर्गत विधानसभा पर प्रदर्शन, राज्य के मुख्यमंत्री एवं स्वास्थ्य मंत्री को ज्ञापन, जिलों पर प्रदर्शन और जन सुनवाइयां आयोजित करते रहे। मार्च 2011 में राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री ने बजट पूर्व सलाह बैठक बुलाई जिसमें नागरिक संगठनों द्वारा नि:शुल्क दवा सभी नागरिकों के लिए उपलब्धता के विषय को बहुत मजबूती से प्रस्तुत किया। प्रस्तुतीकरण के तत्काल बाद तत्कालीन मुख्यमंत्री अशोक गहलोत ने इसकी घोषणा कर दी कि 2 अक्टूबर 2011 से नि:शुल्क दवा योजना प्रारंभ कर दी जाएगी और चित्तौड़गढ़ के पूर्व कलेक्टर समित शर्मा की एक नए निगम का प्रबंध निदेशक बनाकर यह कार्य सौंपा गया। डॉ. शर्मा ने अपनी लगन, मेहनत एवं निष्ठा से यह योजना प्रारंभ की और इसके लिए दवा निर्माता कंपनियों से उच्चतम मापदंडों पर दवाओं का क्रय करते हुए, जिला भंडारण गृहों से लेकर समस्त चिकित्सा संस्थानों में दवा वितरण केन्द्रों की स्थापना की। एक अनुमान के अनुसार इस योजना के प्रारंभ होने से सरकार ने मात्र 300 करोड़ का खर्च किया लेकिन नागरिकों की जेब से लगभग 2500 करोड़ रूपए की बचत हुई। सभी प्रकार की दवाइयां जैसे कुत्ता काटने का टीका जो बाजार में 500 रूपए लगभग का है भी नि:शुल्क मिलने लगा। नवंबर 2012 में नि:शुल्क दवाओं की सूची में अन्य मंहगी दवाइयां जैसे कैंसर इत्यादि की दवाइयां जोड़ दी गई। इमेनिटिब मिसायलेट नामक दवा रक्त कैंसर के उपचार के लिए आवश्यक है और बाजार में उसके एक माह के उपचार की गोलियों का मूल्य 12,000 रु. तक था को अब उसे निशुल्क दिया जाने लगा।

नि:शुल्क दवा योजना ने राज्य में चिकित्सा सेवा की उपलब्धता को अनेक गुना बढ़ा दिया है। किंतु दिसंबर 2013 में राज्य विधानसभा के हुए चुनाव में इस योजना का लाभ मिलने की आशा थी जो नहीं हुआ। अत: प्रश्न है कि क्या इस प्रकार की योजनाएं जिनको लोक लुभावन योजना भी कहा जाता है का राजनैतिक लाभ मिल सकता है। यह प्रश्न जटिल है क्योंकि इसका कोई सीधा सादा उत्तर नहीं है। देश के अन्य राज्य जैसे मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में वो ही राजनैतिक दल जो पूर्व में भी सत्ता में थे, पुन: मजबूती से इन ही लोक लुभावन योजनाओं के बल पर सत्ता में आ गए।

सुप्रीम कोर्ट में तमिल

इस देश के सुप्रीम कोर्ट ही नहीं, हाई कोर्टों में भी कार्यवाही अंगरेजी में होती है। याचिकाएं अंगरेजी में लगाई जाती है, बहस अंगरेजी में होती है और फैसले अंगरेजी में होते हैं। देश के उच्च न्यायालयों में उन प्रांतों की भाषाओं में काम हो, इसके लिए श्यामरुद्र पाठक काफी लंबा आंदोलन कर रहे हैं। लेकिन सरकारों और न्यायपालिका के मुखियाओं के कानों पर जूं भी नहीं रेंग रही है।

ऐसी हालत में 16 दिसंबर 2013 का दिन एक आश्चर्य लेकर आया। इस दिन सुप्रीम कोर्ट में तमिलनाडू के 86 वर्षीय गांधीवादी और स्वतंत्रता सेनानी 'सेलम' वेलू गांधी द्वारा लगाई गई याचिका पर संक्षिप्त सुनवाई हुई। उन्हें खुद न्यायालय में तमिल में अपनी बात रखने की इजाजत दी गई। उन्होंने मांग की कि न्यायालय केंद्र व राज्य सरकारों को निर्देश दे कि अंतर्जातीय शादियों के बच्चों के लिए एक नई 'गांधी जाति' बनाकर जातिरहित समाज के निर्माण का रास्ता साफ करे। जाति प्रथा से व्यथित होते हुए उन्होंने कहा कि सारी जातियां खतम करके 'गांधी जाति' को ही मान्यता दी जाए।

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पी. सदाशिवम ने इस याचिका को अस्वीकार कर दिया। तमिल में बोलते हुए उन्होंने सुझाव दिया कि याचिकाकर्ता सरकार के पास जाए। इस पर उसको विचार करना है।

वह दिन कब आएगा, जब किसी न्यायाधीश की मेहरबानी से नहीं, हक के साथ, भारत के लोग भारतीय भाषाओं में न्याय पा सकेंगे ? *(संकलित)*

आदिवासियों को लेकर सियासी खेल

अनिल कुमार वर्मा

स्वतंत्रता और संविधान निर्माण के बाद उत्तर प्रदेश को जनजातिविहीन राज्य मान लिया गया। जिस राज्य में अनेक जनजातियां रही हों उसको जनजातिविहीन राज्य की संज्ञा देना उस राज्य और उसमें निवास करने वाली जनजातियों के साथ घोर अन्याय है। इससे उन जनजातियों के न केवल संवैधानिक अधिकारों का हनन वरन उनकी अस्मिता का भी लोप हो गया। यह सब बावजूद इसके कि संविधान ने उनके उन्नयन और उन्हें समाज की मुख्य-धारा में लाने के लिए अनुसूचित-जाति और अनुसूचित-जनजातीय आयोग के गठन का प्रावधान किया।

उत्तर प्रदेश में जनजातियों की मूल समस्या उनकी अस्मिता और सही जनगणना को लेकर है। इन दोनों समस्याओं की जड़ में संविधान के प्रावधान और सरकारों की उदासीनता रही है। स्वतंत्रता के पूर्व उत्तरप्रदेश में सैकड़ों जनजातियां थीं। उनमें से अधिकतर अत्यंत पिछड़े क्षेत्रों जैसे कुमायूं और गढ़वाल की पहाड़ियों, नेपाल से लगी तराई, बुन्देलखण्ड, मिर्ज़ापुर और विन्ध्य-प्रदेश तथा पूर्वी-उत्तर प्रदेश के अनेक जिलों में रहती थीं। लेकिन संविधान बनने के बाद प्रदेश में केवल पांच जनजातियों- भोटिया, बुक्सा, जान्सारी, राजी और थारू - को ही 'अनुसूचित-जनजाति' के रूप में मान्यता प्रदान की गई। शेष जनजातियों को पूरी तरह से उपेक्षित कर दिया गया। इस तरह संविधान ने जनजातियों को दो भागों में बांट दिया। अनुसूचित-जनजाति और गैर-अनुसूचित-जनजाति। सभी सुविधाएं अनुसूचित-जनजातियों को दे दी गई, लेकिन गैर-अनुसूचित-जनजातियों के लिए कोई भी संरक्षणात्मक प्रावधान नहीं किए गए। इतना ही नहीं, गैर-अनुसूचित-जनजातियों का अलग से कोई सामाजिक-वर्ग न बनाए जाने के कारण उनकी अलग से जनगणना भी नहीं की जा सकी, वरन उनको हिन्दू समाज के सबसे निचले तबके - अनुसूचित-जाति और अन्य- पिछड़ा-वर्ग - में शुमार कर लिया गया। इससे न केवल उनकी अस्मिता को ठेस पहुंची अपितु उनकी विशाल संख्या से अनुसूचित-जातियों और अन्य-पिछड़ा-वर्ग की गणना में भी त्रुटिवश अपार वृद्धि हो गई। दुष्परिणामस्वरुप, प्रदेश में अनुसूचित-जनजातियों को लोकसभा और विधानसभा में आरक्षण नहीं मिला, और सरकारी नौकरियों में आरक्षण का जो कोटा उनके लिए रखा गया था उसे अनुसूचित-जातियों को दे दिया गया। उनको मात्र एक-प्रतिशत आरक्षण देकर उनके हिस्से का शेष कोटा अनुसूचित-जातियों के कोटे में मिला दिया गया जिससे उनका आरक्षण 14 प्रतिशत से बढ़ कर 21 प्रतिशत हो गया। यह अनुसूचित-जनजातियों के साथ सरासर अन्याय था।

संविधान ने राष्ट्रपति को अधिकृत किया कि वे प्रदेश के राज्यपाल से सलाह कर अनुसूचित-जनजातियों की राज्यवार सूची बनाए। ऐसी ही सूची उनको अनुसूचित-जातियों के लिए भी बनानी थी। अनुसूचित-जातियों में वे जातियां थीं जिनको उस समय अछूत माना जाता था। उनको चिन्हित करना सरल था। पर जनजातियों को अनुसूचित करने का न तो कोई कारण था, ना ही कोई वस्तुनिष्ठ आधार क्योंकि उनमें न तो ऊंच-नीच का संबंध था, न ही कोई अछूत था। स्वतंत्रता के पूर्व अंगरेजों ने कुछ जनजातीय-क्षेत्रों को अनुसूचित-क्षेत्रों के रूप में चिन्हित किया था और वहां पर बाहरी लोगों की वाणिज्यिक गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाया था। 1935 के कानून के अंतर्गत कुछ पिछड़ी जनजातियों के लिए आरक्षण की भी व्यवस्था की गई थी, लेकिन संविधान बनने के बाद भारत सरकार ने अनुसूचित-क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों को ही अनुसूचित-जनजातियों का दर्जा दे दिया। इससे अन्य क्षेत्रों में रहनेवाली पिछड़ी जनजातियों को अनुसूचित-जनजातियों का दर्जा नहीं मिल पाया। वास्तव में सभी जनजातियां पिछड़ी थीं और बिना किसी भेदभाव के उनको अनुसूचित किया जाना चाहिए था। लेकिन ऐसा हो न सका। और जो हुआ वह शर्मनाक था। एक तो राष्ट्रपति ने 1950 में केवल पांच जनजातियों को प्रदेश में अनुसूचित-जनजातियों के रूप में मान्यता दी, दूसरे प्रदेश सरकार ने 17

वर्षों तक उनके आदेश को धता बता कर उन पांचों अनुसूचित-जनजातियों को अधिसूचित (नोटिफाई) ही नहीं किया। परिणामस्वरूप, भोटिया, बुक्सा, जान्सारी, राजी और थारू अनुसूचित-जनजातियों की गणना उत्तर प्रदेश में नहीं हुई और जनगणना आयोग ने 1951 और 1961 की जनगणना में प्रदेश में अनुसूचित-जनजातियों की संख्या शून्य बताया। 1967 में जब प्रदेश सरकार ने राष्ट्रपति के आदेश को अधिसूचित किया तब जाकर पहली बार अनुसूचित-जनजातियों के रूप में उनकी जनगणना 1971 में की गई। तदनुसार प्रदेश में 1971 में 199000, 1981 में 233000 और 1991 में 287901 अनुसूचित-जनजातियां पाई गई। वर्ष 2000 में उत्तराखंड राज्य बनने के बाद प्रदेश में 2001 की जनगणना में केवल 107963 अनुसूचित-जनजातियां ही रह गईं।

2011 की जनगणना में, उत्तर प्रदेश में अनुसूचित-जनजातियों की आबादी बढ़ कर 11 लाख हो गई है। इस प्रकार, 2001-2011 में अनुसूचित-जनजातियों की आबादी में प्रदेश में 1100 की वृद्धि हुई है। पिछले दशकों के मुकाबले यह ज्यादा लग सकती है क्योंकि 1971-81 में यह वृद्धि 17, 1981-91 में 23 और 1991-2001 में 26 थी। लेकिन, ऐसा लगता है की नूतन जनगणना के आंकड़े गलत हैं क्योंकि जनगणना आयोग ने कुछ समय पूर्व ही अनुसूचित-जनजातियों के मकानों के आंकड़े जारी किए थे जिसके अनुसार उत्तर प्रदेश में अनुसूचित-जनजातियों के 512649 मकान बताए गए। पिछले आंकड़ों के आधार पर एक अनुसूचित-जनजाति मकान में औसतन 5.2 लोग रहते हैं। इस गणना के अनुसार तो प्रदेश में अनुसूचित-जनजातियों की आबादी 25 लाख के ऊपर बैठती है। इसके अलावा, जनगणना आयोग ने यह भी बताया कि 512649 मकानों में कितने-कितने मकानों में अनुसूचित-जनजातियों के एक, दो, तीन, चार, पांच या अधिक विवाहित-जोड़े रहते हैं। यदि इस आधार पर गणना की जाए तो भी अनुसूचित-जनजातियों की जनसंख्या 1380822 बैठती हैं जो आयोग द्वारा घोषित संख्या से 246549 अधिक है। और, यह तब जब इस गणना में बच्चे, अविवाहितों और पांच से ज्यादा विवाहित-जोड़े वाले मकानों के सदस्यों को नहीं गिना गया है। यदि उनको भी गिना जाए तो यह संख्या पच्चीस लाख के आसपास जरूर पहुंच जाएगी (वर्मा-2013)। इतनी कम अनुसूचित-जनजातियां दिखने के कई कारण हैं। एक, 1950 में केवल पांच जनजातियों को अनुसूचित करने की प्रक्रिया दोषपूर्ण थी जिससे अनेक महत्वपूर्ण और बहुसंख्यक जनजातियां जैसे गोंड, धुरिया, खरवार, खैरवार, नायक, ओझा, पठारी, राजगोंड, सहरया, पहरया, बैगा, पंखा, पनिका, अगरिया, चीरो, भुइयां, कहार, मल्लाह, कोल आदि को अनुसूचित न किया जा सका। 52 वर्षों के संघर्ष के बाद, वर्ष 2002 में संसद ने कानून बना कर सत्रह जातियों को अनुसूचित-जातियों की सूची से निकाल कर अनुसूचित-जनजातियों में सम्मिलित किया। लेकिन वह भी केवल आधा-अधूरा, अर्थात इन सत्रह नई अनुसूचित-जनजातियों को उत्तर प्रदेश के 13 पूर्वी जिलों और बुंदेलखंड के ललितपुर में ही मान्यता प्रदान की गई जिससे शेष 58 जिलो में वे अनुसूचित-जाति की सूची में ही बनी रही। जहां इससे कुछ नई अनुसूचित-जनजातियों की अस्मिता को मान्यता मिली वहीं उनका क्षेत्रीय आधार पर बंटवारा भी हो गया; 13 जिलों में वे अनुसूचित-जनजाति और 58 जिलों में अनुसूचित-जाति हो गई - इसके बावजूद कि उनमें रोटी-बेटी का संबंध था और है। यदि इन सत्रह जनजातियों को सम्पूर्ण प्रदेश में अनुसूचित- जनजाति की मान्यता दे दी जाये तो न केवल उनके साथ न्याय होगा वरन उनकी जनसंख्या का भी समुचित आंकलन हो सकेगा।

दो, अभी अनेक ऐसी जनजातियां हैं जिनके बारे में प्रदेश सरकार बात ही नहीं करती जैसे अहेरिया, बहेलिया, बिन्द, कोल, लुनिया/नुनिया, मुसहर, नट आदि। इनकी भी आबादी 40 लाख के आसपास होनी चाहिए। तीन, अनेक जनजातियां 'डीनोटिफाईड' व घुमंतू श्रेणी में रखी गई है और उनमें से अधिकतर 'अन्य पिछड़ा वर्ग' में है जिनको निकाल कर अनुसूचित-जनजातियों की श्रेणी में लाने की जरुरत है। यदि यह सब करने का साहस सरकार में हो तो उत्तर प्रदेश में अनुसूचित-जनजातियों की आबादी प्रदेश की कुल आबादी का सात से आठ प्रतिशत हो जाएगी जो अनुसूचित-जनजातियों की राष्ट्रीय आबादी के अनुपात के बराबर होगा। जिस सामाजिक-वर्ग का इतना बड़ा अनुपात प्रदेश में हो, उस प्रदेश को अनुसूचित-जनजातिविहीन कह देना कितना बड़ा अन्याय है।

यदि राजनीतिक दलों ने अनुसूचित-जनजातियों को लेकर सियासी खेल बंद नहीं किया और उनकी अस्मिता और संख्या से खिलवाड़ करते रहे तो इसके परिणाम प्रदेश और उसकी लोकतान्त्रिक राजनीति के लिए शुभ नहीं होगा।

फिर उलझा नेपाल

अरुण कुमार त्रिपाठी

नेपाल लगातार राजनैतिक अस्थिरता और अनिश्चितता के दौर से गुजर रहा है। ताजा चुनाव में माओवादियों की भारी पराजय हुई और नेपाली कांग्रेस सबसे बड़ी पारटी के रूप में उभर कर आई है। शायद यह लोकतंत्र की शुरुआती प्रसव पीड़ा है, जो लंबी खिंचती जा रही है।

अरुण कुमार त्रिपाठी वरिष्ठ पत्रकार एवं कई पुस्तकों के लेखक हैं।

पताः
जनसत्ता सोसायटी, सेक्टर 9, वसुंधरा, गाजियाबाद (उ.प्र.)

फोनः
09818801766

tripathiarunk@gmail.com

नेपाल की राजनीति 2008 से भी ज्यादा उलझ गई है। 2008 में तो कम से कम क्रांतिकारी संघर्ष से निकली नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी -माओवादी के पक्ष में देशी और विदेशी जनमत की एक लहर थी, जिसके कारण उनकी बातों को तमाम पक्ष गंभीरता से लेते थे। लेकिन इस बार चुनाव में सबसे ज्यादा सीटें जीतकर आई नेपाली कांग्रेस के खिलाफ अभी से ही गोलबंदी तेज हो गई है। इस चुनाव की सबसे चिंताजनक स्थिति है कि किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। उससे भी ज्यादा निराशाजनक पहलू यह है कि जनादेश को पलटने के लिए वे पार्टियां भी तैयार हो रही हैं जिन्होंने चुनाव में हिस्सा लिया था लेकिन उनका प्रदर्शन खराब रहा। 19 नवंबर को हुए संविधान सभा के इस चुनाव में हिंसा की भारी आशंका थी पर छिटपुट घटनाओं और 33 पार्टियों के बावजूद चुनाव शांतिपूर्ण तरीके से हो गया। लेकिन जब परिणाम आया तो पिछली बार 120 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी के तौर पर उभरने वाली नेकपा-माओवादी प्रत्यक्ष चुनाव में महज 26 सीटें पाकर तीसरे नंबर पर खिसक गई। हालांकि आनुपातिक प्रतिनिधित्व में उसे 54 सीटें मिलने के साथ 601 सदस्यों वाली संविधान सभा में उसकी कुल सदस्य संख्या 80 तक पहुंच रही है। इसकी तुलना में नेपाली कांग्रेस को 105 और 91 सीटें मिलाकर 196 और नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी-एमाले को 91 और 84 समेत 175 सीटें मिली हुई हैं। लेकिन नेकपा तीसरे नंबर पर खिसकने के इस झटके को सह नहीं पा रही है। बहुत संभव है कि जनता ने उसे यह सजा इसलिए दी हो कि वह जनसमर्थन और सद्भावना के बावजूद संविधान नहीं बना सकी, उसके नेता भ्रष्ट हो गए और पांच सालों तक देश उहापोह से गुजर कर फिर नई उम्मीद के साथ चुनाव के रास्ते पर गया। इस दौरान अंतरराष्ट्रीय निगरानी में हुए इस चुनाव में मतदाता सूची का विधिवत निरीक्षण, पंजीकरण और उसके चलते फर्जी मतदाताओं की घटी संख्या ने भी चुनाव में धांधली के इरादों पर रोक लगाई। लेकिन नेकपा-माओवादी इस चुनाव को धांधली का चुनाव बताकर इस बात पर अड़ी हुई है कि अगर चुनाव में गड़बड़ी की जांच के लिए एक स्वतंत्र कमेटी नहीं बनाई गई तो उसके सदस्य संविधान सभा की शपथ नहीं लेंगे।

इस बीच एक और नकारात्मक स्थिति यह बन रही है कि नेकपा-एमाले चुनाव समर्थक पार्टियों के गठबंधन से निकल कर उन पार्टियों के साथ जाने के संकेत दे रही हैं, जिन्होंने चुनाव का बहिष्कार किया था। उन दलों में मोहन वैद्य (किरण) के गुट वाली ने कपा-माओवादी आक्रामक तौर पर शामिल है। अभी हाल में मोहन वैद्य ने स्वीकार किया है कि नवंबर में चुनाव के दौरान हुए बमबारी उन्हीं की पार्टी के कार्यकर्ताओं ने चुनाव को नाकाम करने के इरादे से की थी। यह बमबारी एक यात्री बस पर की गई थी जिसमें तीन लोगों की जान चली गई थी और कई लोग घायल हो गए थे। अगर मोहन वैद्य के गुट वाली नेकपा-माओवादी के साथ एमाले भी जुड़ गई और प्रचंड वाली पार्टी भी कमोबेश वैसा ही व्यवहार करती रही तो उन 33

पार्टियों का समूह ज्यादा ताकतवर हो जाएगा जो चुनाव बहिष्कार करने पर अड़ा हुआ था और जिसका कहना है कि संसदीय चुनाव के नेपाल की समस्या का हल नहीं निकलना है।

नेपाली कांग्रेस और एमाले के बीच खटपट की वजह मौजूदा राष्ट्रपति रामबरन यादव भी हैं। एमाले चाहती है कि जब तक रामबरन यादव को राष्ट्रपति पद से हटाकर उनके प्रतिनिधि को राष्ट्रपति नहीं बनाया जाएगा वे सहयोग नहीं करेंगे। चूंकि रामबरन यादव नेपाली कांग्रेस के पूर्व सदस्य हैं इसलिए एमाले उन पर भरोसा करके नहीं चल रही है। उधर प्रचंड के गुट वाली नेकपा-माओवादी न सिर्फ चुनाव धांधली की जांच के लिए समिति की मांग कर रही है बल्कि उसकी मांग उस अंतरिम संविधान में संशोधन की भी है जिसके तहत प्रधानमंत्री बहुमत से चुना जाता है। प्रचंड गुट का कहना है कि प्रधानमंत्री का चुनाव बहुमत की बजाय सर्वानुमति से किया जाना चाहिए।

इस चुनाव में एक और घटना हुई है जिसके कारण राष्ट्रीय से अंतरराष्ट्रीय ताकतें इससे हाथ खींच रही हैं और इसे विफल होते देखना चाहती हैं। चुनाव में जनता ने उन तमाम ताकतों को खारिज कर दिया है जो जाति और भाषाई समूहों के आधार पर देश की राजनीतिक संरचना में संघीय बदलाव करना चाहती थीं। जनता ने इस चुनाव में क्षेत्रीयता और जाति की बजाय राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक पार्टी जैसे उन दलों को समर्थन दिया है जो राजशाही का समर्थन करती रही हैं। चुनाव में उन राजनीतिक ताकतों की भी हार हुई है जो दलित, पिछड़ा और जातीय समूहों के साथ महिलाओं की अस्मिता की राजनीति कर रहे थे। बल्कि इस तबके का प्रतिनिधित्व घटा है। गौरतलब है कि इस राजनीति को बढ़ावा देने में संयुक्त राष्ट्र और यूरोपीय संघ की प्रमुख भूमिका रही है। ब्रिटेन की कुछ संस्थाएं भी इस काम में लगी थीं और इसके लिए वे नेकपा-माओवादी और अन्य पार्टियों का इस्तेमाल कर रही थीं । यही वजह है कि जहां यूएनडीपी जैसे संगठन इस चुनाव से निराश हैं वहीं नेपाली फेडरेशन आफ इंडिजीनस नेशनलिटीज के नेताओं ने कहा है ''यह कहना गलत है कि चुनाव में हमारा कार्यक्रम खारिज कर दिया गया है, हम अस्मिता की राजनीति के समर्थन में सड़क पर उतरेंगे।''

दिलचस्प बात यह है कि चीन नेपाल में उभर रही अस्मिताओं की राजनीति से भयभीत है। इसीलिए उसका कहना था कि जितने जल्दी हो सके संविधान सभा गठित कर संविधान बना डालना चाहिए। वजह साफ है कि नेपाल में अस्मिताओं की राजनीति से झुलसे बिना चीन भी नहीं बचेगा। बात सिर्फ इतनी है नहीं है। इस समय तमाम प्रमुख पार्टियों में भी आंतरिक खींचतान कम नहीं है। नेकपा-माओवादी के नेता प्रचंड और बाबूराम भट्टराई व नारायण काजी श्रेष्ठ एक दूसरे की राय से सहमत नहीं दिखते। यही वजह है कि बाबूराम भट्टराई सफाई देते हैं कि—हम शांति और जनादेश के रास्ते से दूर नहीं जा रहे हैं। कुछ इसी तरह का विभाजन नेपाली कांग्रेस के मौजूदा नेता सुशील कोइराला और वयोवृद्ध नेता गिरिजाप्रसाद कोइराला के बीच भी है। यही वजह कि प्रचंड को उम्मीद है कि वे शांति समझौते के रचनाकार गिरिजा प्रसाद कोइराला से दबाव डलवाकर यह तो करवा ही लेंगे कि प्रधानमंत्री सर्वानुमति से चुना जाए।

कुल मिलाकर नेपाल में जनादेश को धता बताने की राजनीतिक कोशिशें जारी हैं। इस बीच अंतरिम चुनाव परिषद के अध्यक्ष खिल राज रेगमी अपनी सरकार की उपलब्धियों का गुणगान करने में लगे हैं। देखना है नेपाल की संस्थाएं, जनता और वहां लोकतंत्र की स्थापना में लगी वैश्विक संस्थाएं क्या कदम उठाती हैं?

वियतनाम में बांधों पर रोक

इंटरनेशनल रिवर्स

भारत में तो सरकार जनविरोध के बावजूद बड़े बांध बनाने पर तुली है। लेकिन वियतनाम में बड़े बांधों के दुष्प्रभावों पर जागरुकता बढ़ रही है। पर्यावरण का नुकसान और भूकंप के खतरों पर विचार हो रहा है। कई जलविद्युत परियोजनाओं को रद्द कर दिया गया है। हालांकि लाओस बिना विचारे मेकांग नदी पर बांध बना रहा है।

वियतनाम ने डोंग नाई नदी पर बनने वाले दो बांधों के निर्माण की योजना को इस आधार पर रद्द कर दिया क्योंकि इसकी वजह से 327 हेक्टेयर जंगल नष्ट हो रहे थे। इसमें से 128 हेक्टेयर केट टिईन राष्ट्रीय पार्क का हिस्सा हैं। परियोजना के दूरगामी प्रभाव राष्ट्रीय पार्क के अंतर्गत स्थित बाऊ-साऊ वेटलेंड (घड़ियाल झील) को भी नुकसान पहुंचाते।

केट टिईन राष्ट्रीय पार्क को यूनेस्को ने सन् 2001 में जीवमंडल संरक्षित क्षेत्र के रूप में मान्यता दी थी और अब यह विश्व के छह सबसे बड़े जीवमंडलों में से एक है। यहां पर दुर्लभ पौधों की करीब 1700 प्रजातियां और 700 से अधिक प्रजातियों जानवर व चिड़ियाएं मौजूद हैँ, जिनमें से कई का अस्तित्व खतरे में है। वेटलेंड पर हुए रामसार सम्मेलन के तहत राष्ट्रीय वन में स्थित बाऊ-साऊ वेटलेंड का भी अंतरराष्ट्रीय महत्व है। क्षेत्र में जलविद्युत क्षमता के विस्तार से इसका राष्ट्रीय पार्क का दर्जा ही खतरे पड़ जाता।

मई में हुई विश्व विरासत समिति की एक बैठक में पाया गया कि जलविद्युत संयंत्रों, खनन और वन्य जीवों के व्यापार के खतरों के चलते, इस राष्ट्रीय पार्क की गरिमा को धक्का पहुंच रहा था। अतएव समिति ने इस राष्ट्रीय पार्क को प्राकृतिक विश्व विरासत का दर्जा देने से इंकार कर दिया था। अंतत: वियतनाम के उपप्रधानमंत्री ने परियोजनाओं के पर्यावरणीय प्रभावों की रिपोर्ट प्राप्त कर लेने और वियतनाम रिवर नेटवर्क सहित स्थानीय समूहों के दबावों के मद्देनजर इन बांधों पर रोक लगा दी।

इस वर्ष के प्रारंभ में वियतनाम के प्रधानमंत्री न्गुयेन रान डंग ने देशभर की सभी जलविद्युत परियोजनाओं में बांध सुरक्षा बढ़ाने के लिए निर्देश दिए थे। प्रधानमंत्री की यह घोषणा 190 मेगावाट विद्युत उत्पादन क्षमता वाले सांग ट्रांह-2 विद्युत परियोजना कांप्लेक्स को लेकर हुई थी, जिसमें जलाशय की क्षमता या भूकंप की स्थिति में इसकी स्थिरता का ठीक से आकलन ने होने की बात सामने आईथी। सन् 2011 से इस बांध में भूकंप के झटकों की झड़ी सी लग गई है, जिसने गांवों को तबाह कर दिया था। इस घटना से ग्रामीण भी घबराए हुए हैं।

इसी वर्ष जून में गिआ-लाई के मध्य उच्च क्षेत्र में केरी-2 बांध के ध्वस्त होने से बांधों की सुरक्षा पर पुन: प्रश्नचिन्ह लग गया है। इस संबंध में हुई जांच से यह बात सामने आई है कि बांध का निर्माण स्वीकृत डिजाइन के अनुरूप नहीं हुआ था। इस बांध में अंदर के ढांचे को 20 सेंटीमीटर मोटी सीमेंट की परत से ढकने की बजाए इसे मिट्टी से बना दिया, जिससे बांध तय योजना से बहुत कमजोर बना था। मई में वियतनाम की सरकार ने पर्यावरणीय मानकों पर खरा न उतरने पर 338 जलविद्युत परियोजनाओं को रद्द कर दिया था। उपप्रधानमंत्री के अनुसार तब से 67 अन्य जलविद्युत परियोजनाओं को या तो निलंबित या रद्द कर दिया गया है।

वियतनाम पड़ौसी देशों में निर्मित बांधों खासकर मेकांग नदी में बनाए जा रहे बांधों से पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों की गणना और उन्हें रोकने के प्रयास भी कर

इंटरनेशनल रिवर्स नदियों पर विनाशकारी परियोजनाओं के खिलाफ एक अंतरराष्ट्रीय मंच है।

रहा है। उप प्रधानमंत्री ने मेकांग देशों का आह्वान किया है कि वे वर्ष 1997 के संयुक्त राष्ट्र जलधारा समझौते का अनुमोदन करें जो सन् 1995 के ऐसे मेकांग समझौते की तरह नहीं है जिसमें कि लाओस के झायाबुरी बांध से वियतनाम और कंबोडिया पर पड़ने वाले प्रभावों पर विचार ही नहीं किया गया था। लेकिन इस बार के समझौते में उन बांधों पर रोक लगाने का प्रावधान मौजूद है, जिनसे व्यापक पैमाने पर सीमा पार प्रभाव पड़ते हों। दुर्भाग्यवश लाओस ऐसे किसी सम्मेलन के प्रति सहमति देने को तैयार नहीं है और वह क्षेत्र में अकेला ही है, जो सन् 1995 के मेकांग समझौते पर चल रहा है।

एक जबकि दूसरी ओर वियतनाम अपने देश में वर्तमान में विद्यमान और भविष्य में पड़ौसी देशों में निर्मित होने वाले बांधों के प्रभाव व सुरक्षा प्रभावों के आकलन को लेकर गंभीर प्रयत्न करता नजर आ रहा है। वहीं दूसरी, लाओस बहुत नाटकीय ढंग से मेकांग की मुख्यधारा में बदलाव को लेकर जबरन आगे बढ़ता जा रहा है। इस प्रक्रिया में न तो वह यह ध्यान रख रहा है कि इसका पड़ौसी देशों पर क्या प्रभाव पड़ेगा और न ही इस बात का कि इन परियोजनाओं से स्वयं उसे भी न्यूनतम लाभ ही प्राप्त होगा। मई के महीने में लाओस ने मेकांग नदी आयोग (एमआरसी) के तहत दूसरी मेकांग मेनस्ट्रीम परियोजना के अंतर्गत 260 मेगावाट के डॉन साहोंग बांध की अधिसूचना जारी कर दी।

यदि साहोंग बांध बन गया तो इससे सूखे मौसम में मेकांग में मछलियों के आने जाने का एकमात्र रास्ता बाधित हो जाएगा, जिससे दुनिया का एक विशाल मछली भंडार संकट में पड़ जाएगा और वियतनाम और कंबोडिया जैसे देशों के खाद्य संकट में फंस जाने का खतरा भी पैदा हो जाएगा।

(सप्रेस / थर्ड वर्ल्ड नेटवर्क फीचर्स)

मेकोंग नदी : एक और नर्मदा

जैसे भारत में नर्मदा और ब्रह्मपुत्र नदियों पर अनेक बांध बन रहे हैं और यह जनांदोलनों तथा विवादों के केंद्र में रही है, वैसे ही दक्षिण-पूर्वी एशिया में मेकोंग नदी है।

मेकोंग नदी एशिया की बड़ी नदियों में से एक है जिसका जलग्रहण क्षेत्र और रास्ता म्यांमार, थाईलैंड, लाओस, कंपूचिया, वियतनाम आदि कई देशों में पड़ता है। इसको लेकर इन देशों को मिलाकर 'मेकोंग नदी आयोग' बना है, जिसकी ताजा (पांचवीं) बैठक 14 दिसंबर 2013 को टोक्यो में हुई है। दो साल पहले आयोग की बैठक में यह तय हुआ था कि मुख्य नदी पर बांध बनाने के पहले इसके प्रभावों का विस्तृत अध्ययन करने की जरूरत है। इस नदी पर 11 बड़े बांध प्रस्तावित हैं।

लेकिन लाओस इन अध्ययनों का इंतजार किए बगैर बांध बनाने के लिए आगे बढ़ रहा है। वह जायाबुरी बांध बना रहा है और उसने डॉन साहोंग बांध बनाने की भी घोषणा कर दी है।

मेकोंग नदी पर पहला बड़ा बांध 1994 में पाकमुन बांध बना था। इससे 20 हजार लोग प्रभावित हुए। नदी में मछली बहुत कम हो गई। विरोध में आंदोलन चलता रहा। बारह साल के संघर्ष के बाद लोगों की पहली जीत तब हुई जब सरकार मछलियों के आवागमन के लिए प्रतिवर्ष 4 माह के लिए बांध के द्वार खोलने के लिए सहमत हुई। मछलियां प्रजनन के लिए नदी में ऊपर की ओर जाती हैं और अंडे देती हैं।

ग्रामवासियों ने इस बांध को स्थायी रूप से तोड़ने की मांग को लेकर आंदोलन जारी रखा है।

आपातकाल में किशन जी के साथ

मनोज वर्मा

आपातकाल के विरोध की अलख जलाने किशन पटनायक दिल्ली आए। ख़ुफिया पुलिस उनके पीछे लग गई। फिल्मी अंदाज में ऐसे गिरफ्तारी हुई, जैसे किसी बड़े आंतकवादी सरगना को पकड़ा जा रहा हो। दहशत, पूछताछ, यातनाओं से भरे उन दिनों का किस्सा एक सहयोगी की कलम से।

मनोज वर्मा समाजवादी आंदोलन और बिहार आंदोलन के एक प्रमुख कार्यकर्ता रहे हैं।

पता:
दुर्गानगर, नरायणपुर रोड, रामनगर, प.चंपारण, बिहार-845106

फोन:
09162534040, 09430688404

आपातकाल के विरोध के लिए संभावनाओं की तलाश में किशन पटनायक जी दिल्ली आ रहे थे। मैं सुबह-सुबह उनको लेने नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पहुंचा। बात 6 अगस्त 1975 की है। गाड़ी में विलंब था। सतर्कता को लेकर वर्दीधारी पुलिस की भरमार थी। मुसाफिर तो सहज ही आ जा रहे थे। मगर स्टेशन का माहौल देखकर मैं सहमा हुआ था। पकड़े जाने की आशंका से भयभीत था। जो भी व्यक्ति मुझे जरा ठहरी निगाह से देखता उस पर मुझे खुफिया विभाग का आदमी होने का शक होता। लगता था जैसे वह मुझे शक की नजर से घूर रहा है।

खैर, जैसे-तैसे समय बीता। गाड़ी आई। मैं किशन जी के साथ अनिल अग्रवाल (विज्ञानकर्मी, जिन्होंने सेंटर फॉर साईंस एंड एनवायरनमेंट की स्थापना की) के घर पहुंचा। किशन जी को उन्हीं के यहां गुलमोहर पार्क में ठहरना था। उसके बाद मैं अपने भाई के घर आर.के. पुरम सेक्टर 9 चला गया। शाम को फिर उनसे मिलने गया। अनिल अग्रवाल से मेरा पहले से कोई परिचय नहीं था। उनसे पहली बार भेंट हुई। इसके पहले हम एक, दूसरे को जानते भी नहीं थे। किशन जी से ही मेरी मुख्य रूप से कुछ बातें हुईं। दूसरे दिन 3-4 बजे के आसपास मैं किशन जी से कनाट प्लेस में मिला। कनाट प्लेस के सुपर बाजार से हम लोग लूडलो कैसल रोड में गुजराती समाज धर्मशाला के लिए चल दिए। धर्मशाला में एक कमरा आरक्षित था, जहां रात में इमरजेंसी विरोधी कार्यकर्ताओं की बैठक होनी थी। बैठक में जार्ज फर्नांडीज साहब भी शामिल होने वाले थे। किसी भी बात में उन्हें डाक्टर कह कर संबोधित किया जाता था।

जब हम लोग गुजराती समाज धर्मशाला पहुंचे तो शाम हो चुकी थी। वहां पर जनसंघ के अजय राण मिले। वे आकर्षक व्यक्ति थे। लगता था कि इस बैठक के वह मुख्य करता-धरता थे। बैठक में विलंब हो रहा था। किशन जी को रात में उधर ही कहीं ठहरना था। इस कारण मैं बैठक शुरु होने से पहले ही भाई के घर वापस चला गया।

दूसरे दिन फिर हम लोग कनाट प्लेस के सुपर बाजार के बस स्टैंड पर मिले। मैं वहां पहले से था। किशन जी के साथ मैं भाई के घर चल दिया। रास्ते में किशन जी ने बताया कि सुबह नौ-दस बजे के करीब वे गांधी शांति प्रतिष्ठान गए थे। बीच में वे और कहां-कहां गए, इस पर कोई बात नहीं हुई।

भाई के घर पर अच्छी-खासी अनौपचारिक वार्ता हुई। वहां वर्तमान लोकसभा की अध्यक्ष श्रीमती मीरा कुमार के पति मंजुल कुमार भी आ गए। वे मेरे अंतरंग हैं। जब भी मैं दिल्ली में होता तो वे मेरे पास प्राय: ही शाम को आया करते थे। उनके अतिरिक्त, भाई के एलआईसी की किसी शाखा के प्रबंधक कृष्णन भी आ गए। अब उनका पूरा नाम याद नहीं है। संयोगवश उसी समय भाई के एक दोस्त भी आ गए। वे सेना में मेजर थे। भाई से उनको कोई निजी काम था। कृष्णन अपने

छात्र जीवन में किसी साम्यवादी छात्र संगठन से जुड़े रहे थे। आम राजनैतिक गपशप में अच्छा समय निकल गया।

किशन जी जाने को हुए। दूसरे दिन के लिए मंजुल कुमार ने हम दोनों को अपने घर खाने पर बुलाया। कोई स्पष्ट चर्चा नहीं हुई, पर ऐसा लगता था कि वहां पर कोई गोपनीय बात की जानकारी मिलेगी। उन दिनों वे बाबू जगजीवन राम जी से अलग रहा करते थे।

दूसरे दिन उनके घर जाने की नौबत ही नहीं आई। मंजुल और अन्य लोगों के निकलने के थोड़ी देर बाद ही हम लोग पकड़े गए। घर के पीछे ही बस स्टैंड था। बस स्टैंड से थोड़ी ही दूर पर संगम सिनेमा हाल था। इसी बीच हम लोग टहलते हुए बातें कर रहे थे। अचानक मुझे लगा कि हमारे पीछे-पीछे कोई चल रहा है। मैंने मुड़कर देखा तो एक मोटा नाटा आदमी था। हाव-भाव से खुफिया के आदमी होने की शंका हुई। अभी हम लोग बस स्टैंड से कुछ ही दूर थे कि तीन मुहानी के तीनों रास्ते से चार-पांच पुलिस की गाड़ियां बड़ी तेज गति आईं और एक झटके साथ हमारे पास आकर रुक गई। ऐसा लगा जैसे हम लोग टकराते-टकराते बचे हैं। आनन-फानन में किशन जी को जीप के अंदर कर दिया। मुझे नीचे ही घेर कर खड़े रहे। आधे-पौन घंटा हमें वहीं रखा। जब उनकी एंबेसेडर कार आ गई तब उसमें आए अफसरों से बात करके पुलिस वाले हमें लेकर चले। मेरी जीप के आगे एक जीप और उसके पीछे एक जीप। फिर किशन जी वाली जीप। उसके पीछे एक और जीप।

हमें नजफगढ़ थाना लेकर आए। रास्ते में वे बात कर रहे थे। इमरजेंसी ड्यूटी से वे तंग आ गए थे। सुबह ड्यूटी पर आ जाना होता था और देर रात छुट्टी मिलती थी। उन्होंने मुझे बताया हमारी किस्मत खराब थी। वे निराश होकर जाने ही वाले थे, तब तक हमलोग दिख गए।

गांधी शांति प्रतिष्ठान के आस-पास खुफिया वाले बराबर घूमते रहते थे। वहीं उन लोगों ने किशन जी को देख लिया था। वहीं से वे उनका पीछा कर रहे थे। किंतु रास्ते में थोड़ी-थोड़ी देर के लिए किशन जी आंखों से ओझल हो जाते थे। किशन जी को बीच-बीच में बस बदलना पड़ता था। जब हम भाई के घर पहुंचे उस समय भी पुलिस वाले भ्रमित हो गए। आर के पुरम सेक्टर-9 के बदले पुलिस वाले सेक्टर-8 को घेरे हुए थे।

नजफगढ़ थाने में हमें आम हवालात में बंद किया गया। एक बड़े कमरे के बीच में दीवार उठाकर दो कमरे बना दिए गए थे। हम एक-दूसरे को छड़ वाले फाटक से देख सकते थे। मेरे कमरे में पहले से एक ऑटो रिक्शा चालक बंद था। एक आदमी और भी था। पता नहीं वह कौन था। किशन जी शायद अपनी हवालात में अकेले थे। मेरे वाली हवालात में सोने-बैठने के लिए एक पुरानी चटाई थी। वह कई जगह से उधड़ी हुई थी। पेशाब करने के लिए एक बड़ा घड़ा था। घड़े से असहनीय दुर्गंध फैल रही थी।

हम जब भी आपस में बात करना चाहते तो संतरी कड़ाई से रोक देते थे। हम छड़ वाले फाटक से सिर्फ एक दूसरे को देख भर सकते थे। कुछ देर बाद हवालात की बत्ती से हलकी रोशनी आती थी।

रात को 2 बजे मुझे राजेन्द्र नगर मूर्ति के पास पुलिस वालों ने अपने वाहन से छोड़ा। वहां से मैं अपने भाई के दोस्त राज के साथ मोटर साईकल से घर आया।

दूसरे दिन सुबह मैं, पत्नी और मेरी दस माह की

बेटी नारायणा में अपने ममेरे भाई राजीव वर्मा के घर चले गए।

तीन बजे दिन में पुलिस के साथ खुफिया वाले मेरे भाई के घर आर के पुरम आए। मुझे वहां नहीं पाने के बाद भाई को पकड़कर महारानी बाग में एक निर्जन बंगले में ले गए। वहीं कृष्णन और अनिल अग्रवाल को ले आए। इन लोगों से काफी पूछताछ हुई। किसी को शारीरिक यातना नहीं दी गई। फिर भी सभी बुरी तरह दहशत में थे। केवल भाई को तरह-तरह से भयभीत कर रहे थे कि वे मेरा पता बता दें। भाई टूट गए और उन्होंने मेरा पता बता दिया। खुफिया वाले नौ बजे रात को मुझे नारायणा से महारानी बाग ले आए। मुझे देखते ही भाई, कृष्णन और अनिल अग्रवाल एक तरह से बिलखते हुए मुझसे गिड़गिड़ाने लगे कि मै सच-सच सब कुछ बता दूं। मैंने खुफिया वालों को काफी विश्वास दिलाने का प्रयास किया कि इन लोगों का किसी तरह से राजनीति से संबंध नहीं है। मुझसे बहुत जिरह करने के बाद उन लोगों ने मेरी बात मान ली। इन लोगों को घर छोड़ दिया गया।

करीब आधी रात को मुझे दरभंगा हाउस ले गए। वहां एक अजीब चेहरे वाले, पतले-दुबले, ढलती उम्र के आदमी के हवाले मुझे कर दिया। वहां मुझे एक बड़े हॉल में बंद कर दिया। हॉल में बैठने-सोने को कुछ भी नहीं था। मैं फर्श पर ही लेट गया। पर वह बूढ़ा मुझे चैन से नहीं रहने देता था। नींद आने का तो सवाल ही नहीं था। थोड़ी-थोड़ी देर में वह बूढ़ा खिड़की से उल्टी-सीधी बातें करता रहता था। उसके बकवास से मन और ऊब जाता।

सुबह वह मुझे पंडारा रोड मार्केट में रोड साइड की चाय दुकान पर ले गया। चाय पिलाई। वापस आते समय रास्ते में खूब सहानुभूति भरी सांत्वना देता रहा। वह मुझे अपने को ईश्वर पर छोड़ देने को कहता। सच बातें बता देने पर सब कुछ ठीक हो जाएगा। मुझे अच्छी आर्थिक मदद दी जाएगी। अन्यथा ऐसा न हो कि कहीं मेरा बहुत बुरा हो जाए। उसकी बातों से बहुत चिढ़ होती। पर चुप रह कर सहने के सिवा कोई उपाय नहीं था।

असल में जॉर्ज फर्नांडीज और किशन जी को लेकर मेरी गिरफ्तारी का मामला अत्यंत गंभीर हो गया था। जार्ज से इंदिरा गांधी भयभीत थीं। जार्ज की गिरफ्तारी उनकी प्रतिष्ठा का प्रश्न था। किशन जी के साथ गुजराती समाज धर्मशाला की बैठक ने मामले को और गंभीर कर दिया था। सोशलिस्ट पार्टी के जंगपुरा, महादेव रोड के कार्यालय पर छापा पड़ा था।

दूसरे दिन चारों खुफिया वाले दस बजे दिन में दरभंगा हाउस पहुंचे। मुझे कारिडोर में एक बेंच पर बिठा दिया। सामने वाले कमरे में किसी बड़े साहब से मिलकर शीघ्र वापस आ गए। उसके बाद मुझे बाग लेकर आए। वे बार-बार मुझसे आपातकाल के विरोध में भूमिगत गतिविधियों के बारे में घुमा फिराकर सवाल करते थे। मैं जो कुछ कहता उस पर उन्हें विश्वास नहीं होता। किशन जी के कार्यकलाप के विषय में पूछते। मेरे जवाब से संतुष्ट न होने पर एकाध बार अभद्र शब्दों का प्रयोग भी किया। एक बार हलके से कुछ ज्यादा जोर से मेरे सिर को टेबल पर झटक दिया। मैंने भी इसका रुखाई से विरोध किया। फिर बाकी समय कभी मेरे साथ अशोभनीय बर्ताव नहीं किया। पर कुछ यातनाएं दी। उस रात मुझे बंगले के बाथरूम में बंद कर दिया। उसमें बहुत तेज बत्ती जल रही थी। बैठने को भी उसमें कुछ नहीं था। गर्मी से परेशान था। सुबह माथे में अजीब जलन थी। अनिद्रा के कारण दिमाग पर सुस्ती छाने लगती थी। दोपहर में बंगले के पीछे आंगन में चार-पांच घंटा कड़ी धूप में खाट पर छोड़ दिया। फिर अंदर आने पर वही सब सवाल दुहराने लगे। पूछने

अभी हम लोग बस स्टैंड से कुछ ही दूर थे कि तीन मुहानी के तीनों रास्ते से चार-पांच पुलिस की गाड़ियां बड़ी तेज गति आईं और एक झटके साथ हमारे पास आकर रुक गई। ऐसा लगा जैसे हम लोग टकराते-टकराते बचे हैं। आनन-फानन में किशन जी को जीप के अंदर कर दिया। मुझे नीचे ही घेर कर खड़े रहे। आधे-पौन घंटा हमें वहीं रखा। जब उनकी एंबेसेडर कार आ गई तब उसमें आए अफसरों से बात करके पुलिस वाले हमें लेकर चले। मेरी जीप के आगे एक जीप और उसके पीछे एक जीप। फिर किशन जी वाली जीप। उसके पीछे एक और जीप।

लगे। कभी होटल में खिलाते, कभी बंगले में ही होटल से खाना मंगा देते।

14 अगस्त को दोपहर बाद मुझे लेकर गुजराती समाज धर्मशाला चले। लाल किले में 15 अगस्त की तैयारी अंतिम दौर में थी। वहां से गुजरते हुए सब दिखा। सुरक्षा की भी कड़ी व्यवस्था लग रही थी। इसी बीच खुफिया वालों को बंगलादेश के राष्ट्रपति शेख मुजीबुर रहमान की घटना पर बात करते सुना। उनकी परिवार सहित हत्या की जानकारी उनकी बातों से ही मुझे मिली।

गुजराती समाज धर्मशाला पहुंचकर मुझे उस दिन के बैठक वाले कमरे को खुलवाना था। वहां बाहर ही सीढ़ी के पास ही अजय राणा मिल गए। मैंने उनसे बात नहीं की। सिर्फ अपने पैर से उनके पैर का अंगूठा दबा दिया। पता नहीं कैसे खुफिया वालों को अपने पहचाने जाने का आभास हो गया। तुरंत मुझे वापस लेकर काली एंबेसेडर की अगले सीट पर बैठाकर तेजी से चल निकले। मेरा सिर भी नीचे झुका दिया, ताकि बाहर से मैं नहीं दिखूं।

कई दिनों के बाद एक रात मुझे घर पर छोड़ दिया गया। मगर दूसरे दिन फिर सुबह ही पहुंच गए। मेरी पत्नी को लालच और भय दोनों दिखाया। किंतु इसका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने उनकी बातों को दृढ़ता से विरोध किया। उनके झांसे में नहीं आईं। उसके बाद मुझे महारानी बाग ले गए। शाम को मुझे दरियागंज थाना लाए। थाने से कुछ पहले ही काली एंबेसेडर रोक दी। सभी उतरकर चले गए। मैं ड्रायवर के साथ गाड़ी में ही रह गया। वहां रूकने के बाद खुफिया का एक आदमी वापस आया। मुझे गुजराती समाज धर्मशाला ले जाया गया। मुझे उस कमरे में भेजा जहां बैठक हुई थी। उसमें कभी के दूसरे यात्री आ गए थे। मैं खाना खाने वाले हॉल में गया। वहां पहले से ही मेरे साथ का एक खुफिया वाला दाढ़ी मूंछ लगाकर चाय पी रहा था। बिना कुछ बोले मैं उसकी तरफ परिचित की तरह मुखातिब हुआ। वह तुरंत उठ कर कोरिडोर में चला आया। मुझको गुस्से से देखा।

दूसरे दिन शाम को मुझे और मेरे भाई को लेकर नजफगढ़ थाना आए। किशन जी वहां पहले से थे। गिरफ्तारी के बाद उनसे मेरी पहली बार भेंट हो रही थी। हम वहां आमने-सामने पूछताछ के लिए लाए गए थे। उन्होंने पूछताछ में किशन जी को झांसा देने की कोशिश की कि मैंने उनको सब कुछ बता दिया है। लेकिन मैंने इसका विरोध किया। मैंने बताया कि किशन जी समाजवादी विचारधारा के नेता हैं। विचारक हैं। अखबारों, पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर लिखते रहे हैं। मेरे दोबारा यह सब कहने पर उन्होंने मुझसे आगे कुछ पूछताछ नहीं की।

हम लोगों की गिरफ्तारी के बाद कई दिनों तक काली एंबेसेडर मीरा जी और मंजुल कुमार का पीछा करती रही। इससे वे लोग बहुत असहज महसूस करते थे। बाबू जगजीवन राम जी ने शाह कमीशन के सामने अपने वक्तव्य में कहा था कि आपातकाल में उनके बेटी-दामाद को भी परेशान करने से नहीं बख्शा गया।

चुनाव की घोषणा होने पर इमरजेंसी में ढील हुई। भेंट होने पर किशन जी ने बताया कि पूछताछ में उनके साथ सम्मानजनक व्यवहार हुआ। उन्हें नजफगढ़ थाने में ही क्यों लाया गया ? दिल्ली में तो और थाने हैं। नजफगढ़ थाना किसी नवाब की हवेली है। उसमें तहखाना है। यातना देते समय बाहर वालों को कुछ पता नहीं चलता। यही मनोवैज्ञानिक असर उन पर डालना था। ओड़िशा में किशन जी पर मीसा लागू था। गिरफ्तारी की सूचना ओड़िशा पुलिस को दे दी गई थी। ओड़िशा पुलिस उन्हें लेने नहीं आई। उन्हें गिरफ्तार जानकर निश्चिंत हो गई थी। दिल्ली में उन पर कोई आरोप नहीं बना। इस स्थिति में वे छह माह के बाद छूट गए।

नेल्सन मंडेला एक जज्बा

चिन्मय मिश्र

आ जाओ, मैंने धूल से माथा उठा लिया
आ जाओ, मैंने छील दी आंखों से गम की छाल
आ जाओ, मैंने दर्द से बाजू छुड़ा लिया
आ जाओ मैंने नोंच दिया बेकसी का जाल
''आ जाओ, अफ्रीका''

फैज अहमद ''फैज''

पाकिस्तान की मांटगोमरी जेल में बंद फैज ने 14 जनवरी 1955 को यह नज्म लिखी थी। (तब अफ्रीकी स्वतंत्रता संग्राम का नारा था ''अफ्रीका कम बेक'')। जेल में बंद एक व्यक्ति के आशावाद का चरम है यह नज्म और अफ्रीका के स्वतंत्रता संग्राम की ताकत और व्यापकता का अंदाजा भी यह नज्म हमें कराती है। दक्षिण अफ्रीका के प्रथम अश्वेत राष्ट्रपति मडीबा नेल्सन मंडेला के विदा हो जाने के बाद न मालूम कितनी बातें किंवदंतियों की तरह हमारे सामने आ रही हैं। सन् 1918 में जन्मे मंडेला के राजनीतिक सफर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा सन् 1952 में एक शांतिपूर्ण अवज्ञा आंदोलन से शुरू होकर सन् 1962 में उन्हें आजीवन कारावास दिए जाने के बीच सिमटा हुआ है। यहां तक का सफर उन्होंने दौड़ते-भागते तय किया, कमोबेश एक गाड़ी के एक पहिए की तरह जिसमें दूसरे पहिए के रूप में उनके साथ थे ओलिवर टांबो! जेल जाने के बाद मंडेला ने अपने पूरे व्यक्तित्व को एक नई पहचान दी और जब वे 1 मई 1990 को जेल से बाहर आए तब तक वे पहिए से उस धुरी में परिवर्तित हो चुके थे जिस पर सारी यात्रा निर्भर होती है। वे दक्षिण अफ्रीका ही नहीं दुनियाभर के मानवाधिकार आंदोलनों की धुरी बन चुके थे।

आज मंडेला मानव या महामानव नहीं बल्कि एक भावना हैं जो हममें ऊर्जा का संचार करती है। मंडेला जहां एक और विश्व के घृणिततम अपराध, नस्लभेद करने वाली सरकार व शासन प्रणाली के पतन के प्रतीक माने जाते रहेंगे, वहीं दूसरी ओर वे अमेरिका जैसे राष्ट्रों की कथनी और करनी में भेद को उजागर करने वाली शख्सियत के रूप में भी जाने जाएंगे! अमेरिकी प्रशासन तो उन्हें कम्युनिस्ट मानता था और उनकी निगाह में एक समय यह सबसे बड़ा अपराध भी था। सन् 1963 में सीआईए ने मंडेला पर मुकदमा चलाया था। तब ऐसी संभावना थी कि उन्हें मृत्युदंड दे दिया जाएगा। इस दौरान एलन पाटन ने न्यायालय में कहा कि यदि मंडेला और अन्य आरोपियों को मार दिया गया तो सरकार के पास समझौते के लिए कोई नहीं बचेगा। गौरतलब है मंडेला आज हमारे बीच नहीं है और अमेरिका के दो पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन और जार्ज बुश उनके अंतिम संस्कार में शामिल होने दक्षिण अफ्रीका पहुंचे हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि इन दोनों राष्ट्रपतियों के कार्यकाल यानि सन् 2008 तक अमेरिका की सरकार उन्हें आतंकवादी सूची में मानती थी। इस समय तक मंडेला 90 वर्ष के हो चुके थे और सन् 1993 में उन्हें नोबेल शांति पुरस्कार भी मिल चुका था। यानि वे एकमात्र ऐसे ''आतंकवादी'' हैं जिन्हें नोबेल पुरस्कार भी मिला है।

मंडेला एक लड़ाका और बॉक्सर थे। दक्षिण अफ्रीका के आर्कबिशप डेसमंड टूटू ठीक ही कहते हैं कि उनकी लंबी जेलयात्रा से दक्षिण अफ्रीका का फायदा ही हुआ है। ''अगर वह पहले बाहर आ जाते तो हमें गुस्सैल व आक्रामक मडीबा मिलता! उस अनुभव के परिणामस्वरूप वे अत्यंत परिपक्व हो गए। तकलीफ या तो तुम्हें कटु बनाती है या दयापूर्वक उदात्त बनाती है। हमारा यह सौभाग्य है कि मडीबा के साथ बाद वाली स्थिति घटित हुई।'' जेल में उन्हें पत्थर तोड़ने का काम दिया गया। शासक इस बहाने उन्हें तोड़ना चाहते थे। लेकिन पत्थर तोड़ते हुए मंडेला लगातार अपने भीतर कोमलता, प्रेम, सहयोग, सहनशीलता और

क्षमा इकट्ठा करते रहे। पत्थर पर पड़ती उनकी हर चोट जैसे उन्हें और अधिक मानवीय बनाती जा रही थी। फैज आगे लिखते हैं

पंजे में हथकड़ी की कड़ी बन गई है गुर्ज (गदा)
गर्दन का तौक तोड़ के ढाला है मैंने ढाल
''आ जाओ अफ्रीका''

दक्षिण अफ्रीका में व्याप्त रंगभेदी व्यवस्था की करतूतें रोंगटे खड़ी कर देती हैं। औपनिवेशिक सत्ता का नस्लभेदी व्यवस्था में परिवर्तित हो उसे अपना साम्राज्य बना लेना इस व्यवस्था की विशेषता थी। इतना ही नहीं जिस तरह भारत में अंग्रेजी राज के देशी समर्थक थे, ठीक वैसे ही या उससे भी अधिक झुकने वाला स्थानीय आभिजात्य वर्ग वहां भी मौजूद था। कालों के लिए अलग विद्यालय ही नहीं, सड़कें तक थीं। प्रिटोरिया में उनके घुसने की मनाही थी, शाम होने के पहले उन्हें कई शहर खाली कर देने होते थे। इस सबके खिलाफ लड़ने वाले नेल्सन मंडेला जब 27 साल बाद जेल से बाहर आते हैं, तो एकदम रूपांतरित व्यक्ति नजर आते हैं। सही मायने में अब वे एक प्रवक्ता थे और 25-26 जून 1955 को जनता की कांग्रेस में जारी अपने उस ''स्वतंत्रता घोषणापत्र'' को अमल में लाना चाहते थे, जिसमें उन्होंने कहा था, ''हम दक्षिण अफ्रीका के नागरिक घोषणा करते हैं कि दक्षिण अफ्रीका उन सबका है जो इसमें रहते हैं और कोई भी सरकार जो कि लोगों की आकांक्षाओं पर आधारित नहीं हो, हम पर अपने अधिकार का दावा नहीं कर सकती। एक ऐसी सरकार जो कि अन्याय व असमानता से गठित की गई है, ने हमारे लोगों को उनके भूमि, स्वतंत्रता और शांति के जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित किया है। हमारा देश तब तक समृद्ध या स्वतंत्र नहीं हो सकता जब तक कि हमारे सारे लोगों को आपसी भाईचारे और बराबरी के अधिकार व अवसर प्राप्त नहीं हो जाते। केवल तभी एक प्रजातांत्रिक राष्ट्र जो कि लोगों की आकांक्षाओं पर आधारित बिना रंग, नस्ल, लिंग और आस्था के भेदभाव के जन्मसिद्ध अधिकार सुरक्षित कर सकता है।''

साभार: *द हिंदू*

जेल से बाहर आने के बाद नेल्सन मंडेला संभवत: महात्मा गांधी को और अच्छे से पहचान पाए। तभी तो उन्होंने शताब्दियों से हिंसा, आतंक और अत्याचार के बल पर राज करने वाले गोरों को गांधी की ही तरह आम-माफी ही नहीं दी बल्कि अपने में समेट भी लिया। एक राष्ट्र और दो राष्ट्रीयताएं जैसी स्थितियां उन्होंने बदल दी और पीढ़ियों से रह रहे गोरे लोग भी अब बिना भेदभाव के उसी दक्षिण अफ्रीका के नागरिक थे। जाहिर सी बात है, यह कार्य सिर्फ सदिच्छा से ही तो पूरा नहीं हो सकता था। मंडेला ने इस हेतु जबरदस्त राजनीतिक कौशल का परिचय दिया।

मंडेला में एक व्यक्ति में पाई जाने वाली तमाम कमजोरियां भी थी। लोग उनकी विवेचना पहले भी कर चुके हैं और आगे भी करते रहेंगे। शायद आज उसका समय नहीं है। महात्मा गांधी ने जो पौधा उन्नीसवीं शताब्दी में दक्षिण अफ्रीका में रोपा था, मंडेला ने उस पौधे को फल देने तक सींचा। दो पृथक रास्तों से चलने वाली ये विभूतियां अंत में लक्ष्य पर एक ही मार्ग से पहुंचती हैं। मंडेला अपने इस रूपांतरण के लिए महात्मा गांधी के प्रति कृतज्ञ भी रहे। अफ्रीका के नाम के साथ बब्बर शेर का नाम भी जुड़ा हुआ है। मंडेला भी मुस्कराते शेर ही तो थे। फैज की ये पंक्तियां उन पर और उनके देश पर खरी उतरती हैं,

धरती धड़क रही है मिरे साथ, ऐफ्रीका
दरिया थिरक रहा है तो बन दे रहा है ताल
मैं अफ्रीका हूं, धार लिया मैंने तेरा रूप
मैं तू हूं, मेरी चाल है तेरी बबर की चाल।
''आ जाओ अफ्रीका''
(सप्रेस)

ओमप्रकाश वाल्मीकि

सदियों के संताप के विरुद्ध

अरुण कुमार त्रिपाठी

सदियों के संताप के विरुद्ध चीखों को जगाने वाले समर्थ दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का महज 63 साल की आयु में चले जाना उचित नहीं है लेकिन कैंसर जैसी बीमारी को वर्ण व्यवस्था की तरह उचित और अनुचित का ज्ञान कहां है।

उनकी पहली रचना राजकिशोर द्वारा संपादित 'आज के प्रश्न' श्रृंखला की 'हरिजन से दलित पुस्तक'- में पढ़ने का मौका मिला था। 'एक दलित की आत्मकथा' शीर्षक से छपी वह रचना उस पुस्तक का पहला अध्याय थी और उसमें इस टिप्पणीकार का भी दलितों के धर्म परिवर्तन पर लंबा लेख था। यह बात 1994 की है। उसके बाद वह रचना 1997 में 'जूठन' नाम से आत्मकथा के रूप में प्रकाशित हुई। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने राधाकृष्ण से प्रकाशित इस उपन्यास में यह स्वीकार किया है कि आत्मकथा के अंश जल्दी-जल्दी देने के लिए राजकिशोर ने और उसे मुकम्मल उपन्यास की शक्ल दिलाने और उसका नामकरण करने में राजेंद्र यादव का योगदान था। विडंबना देखिए कि ओमप्रकाश वाल्मीकि और राजेंद्र यादव दोनों का निधन थोड़े अंतराल के साथ ही हुआ। यानी हिंदी साहित्य और उसे दलित चेतना से झकझोरने वाली ताकतें कमजोर हुईं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का उपन्यास 'जूठन' वैसे तो नब्बे के दशक के अंत में आया और वह वही समय रहा जब उत्तर प्रदेश में कांशीराम के नेतृत्व में दलित चेतना गोलबंद हो रही थी और सत्ता पर कब्जा जमा रही थी। उस समय हिंदी में दलित आत्मकथाओं का दौर शुरू हो रहा था। हालांकि मराठी में उससे बहुत पहले दलित आत्मकथाओं की झड़ी लग चुकी थी। हालांकि उस दौर में एलीनियर जीलियट और गैल आम्वेट जैसी विदेशी लेखिकाओं ने अंग्रेजी में दलित विमर्श तेज कर दिया था और उसकी धमक हिंदी में भी सुनाई पड़ने लगी थी।

वाल्मीकि का यह उपन्यास उस पश्चिमी उत्तर प्रदेश की आजादी के तुरंत बाद की सामाजिक सच्चाई बयान कर रहा था जहां दलित चेतना पूरे जोर से अंगड़ाई ले रही थी। 'जूठन' उपन्यास यह बताता है कि किस तरह अशिक्षित और छुआछूत के अभिशाप से ग्रसित दलितों को शिक्षित करने का प्रयास मिशनरी कर रही थीं और दूसरी तरफ गांधी के प्रभाव में अछूतोद्धार करने वाली सरकार और उसके स्कूल किस तरह भेदभाव और अपमान के अड्डे थे। ईसाई मास्टर से खिन्न होकर जब उनके पिता उन्हें सरकारी स्कूल ले जाते हैं तो वहां उन्हें ऊंची जाति के मास्टरों के दमन और अपमान को सहना पड़ता है। लेकिन इसका प्रतिकार जब उनके पिता करते हैं तो आरंभ में उन्हें सहयोग नहीं मिलता लेकिन बाद में उसी संघर्ष के सहारे उनके बेटे को नया जीवन और स्वाभिमान की दिशा मिलती है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के इस समाज पर श्योराज सिंह बेचैन और डा धर्मवीर ने भी अपनी आत्मकथाएं लिखी हैं। पर उन सबके बीच वाल्मीकि का अंदाज अलग और जातिगत भेदभाव की जटिल और परतों को उघाड़ने वाला है। इस उपन्यास में वे स्कूल मास्टर की गालियों का उल्लेख न करते हुए भी व्यंग्य के

माध्यम से पाठक को उसकी चुभन उस समय दे देते हैं कि अगर उन्हें लिपिबद्ध कर दिया जाए तो हिंदी की अभिजात्यता पर धब्बा लग जाएगा। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी-पच्चीस चौका डेढ़ सौ- भी उस ठगी और शोषण का दस्तावेज है जो संपन्न जाति के सवर्ण दलितों के साथ करते हैं। यहां एक संपन्न व्यक्ति झूठ को महिमा मंडित करता है।

उनकी कविता 'सदियों का संताप' कहती है -

''दोस्तो, बिता दिए हमने हजारों वर्ष
इस इंतजार में कि
भयानक त्रासदी का युग
अधबनी इमारत के मलबे में
दबा दिया जाएगा किसी दिन
जहरीले पंजों समेत
फिर हम सब बड़े होकर हथेलियों पर
उतार सकेंगे एक-एक सूर्य
.....
दोस्तो इस चीख को जगाकर पूछो कि
अभी और कितने दिन
इसी तरह गुमसुम रहकर
सदियों का संताप सहना है।''

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने गुमसुम होकर सदियों का संताप नहीं सहा बल्कि चीखों को जगाया और उनसे सवाल पूछा। ऐसा ही सवाल वे 'ठाकुर का कुआं' में भी पूछते हैं---

''चूल्हा मिट्टी का,
मिट्टी तालाब की,
तालाब ठाकुर का.....
बैल ठाकुर का,
हल ठाकुर का,
हल की मूठ पर हथेली अपनी,
फसल ठाकुर की....
फिर अपना क्या .. गांव ... शहर... देश...।''

दलित स्वाभिमान और दलित अस्मिता को तलाशते ओमप्रकाश वाल्मीकि उन सवर्ण बुद्धिजीवियों से आगाह करते हैं जो दलित साहित्य की पुरोहिती करना चाहते हैं। आत्मकथा को शिल्प और प्रामाणिकता के आधार पर खारिज करने वाले आलोचकों को वे पुरोहित की संज्ञा देते हैं और कहते हैं कि उन पर एक तरह का ब्राह्मणवाद हावी हैं। वाल्मीकि का कहना है कि यह मानसिकता आत्मकथा की विधा को खारिज करने का षडयंत्र रच रही है, जबकि मराठी में यह विधा स्वीकृत हो चुकी है और साहित्य में उसने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। इसलिए अब फिर उन्हीं सवालों को नहीं पूछा जाना चाहिए जिनका जवाब बार-बार दिया जा चुका है। इसी क्रम में वे 'दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र' नामक विमर्श की रचना करते हैं जो यह साबित करता है कि दलित साहित्य का वह प्रतिमान नहीं हो सकता जो सवर्ण साहित्य का है। वह दमन और शोषण का वर्णन करेगा तो उसकी भाषा भी अलग होगी और वहां प्रेम और मैत्री का स्वरूप भी अलग होगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें सवर्ण कवियों और लेखकों का साहित्य आकर्षित नहीं करता। ओमप्रकाश वाल्मीकि को निराला की 'कुकुरमुत्ता' कविता बहुत पसंद थी। वे कहते थे कि सन् 1941 में हंस में छपी यह कविता निराला की संस्कृत निष्ठ तत्सम पदावली से अलग बोल-चाल की सहज भाषा में रची गई है और उसमें श्रेष्ठता के दंभ को चुनौती दी गई है। निश्चित तौर पर 'कुकुरमुत्ता' कविता में जब कवि कहता है-

'पहाड़ी से उठे सर ऐंठकर
बोला कुकुरमुत्ता
अबे सुन बे गुलाब
भूल मत खुशबूत रंगो आब
चूसा तूने खून धरती का अशिष्ट
इतरा रहा है डाल पर कैपिटलिस्ट....'

तो वह दलितों की तरह शोषितों को ललकारता हुआ लगता है। हालांकि तमाम दलित लेखक निराला के कड़े आलोचक हैं लेकिन वाल्मीकि उनमें अपनी सकारात्मक प्रेरणा ढूंढ लेते हैं। यह उनका 'मोती कूड़ा विवेक' है जिसे हर बुद्धिजीवी और लेखक को रखना चाहिए और यही उसे श्रेष्ठ बनाता है। रचनाशीलता के साथ आलोचना के विवेक के भी धनी ओम प्रकाश वाल्मीकि ने हिंदी समाज को संवेदना, समझ और समृद्धि दी है उसका ऋण हम पर हमेशा रहेगा। वह तभी उतरेगा जब सदियों के संताप के विरुद्ध पूरा समाज खड़ा होगा।

एक अनूठा अस्पताल

बाबा मायाराम

एम्स के कुछ डाक्टरों ने छत्तीसगढ़ के पिछड़े इलाके में एक जोरदार अस्पताल शुरू किया। उन्होंने गांवों में स्वास्थ्य कार्यकर्ता बनाए, इलाज के अलावा रोकथाम, पोषण, जैविक खेती और जागरूकता का भी कार्यक्रम चलाया। भारत के गांवों की सेहत में कैसे व क्या हस्तक्षेप किया जाए, इसका यह एक मॉडल है।

छत्तीसगढ़ में एक अस्पताल ऐसा है, जहां न केवल सस्ता और बेहतर इलाज होता है बल्कि रोग की रोकथाम पर भी ध्यान दिया जाता है। साथ ही जैविक कृषि व पशुपालन पर जोर देकर कोशिश की जाती है कि लोगों को पोषणयुक्त भोजन मिले और वे बीमार ही न पड़ें।

छत्तीसगढ़ के बिलासपुर जिले के एक छोटे से कस्बे गनियारी में चल रहे इस अस्पताल की कीर्ति अब देश-दुनिया में फैल चुकी है।

यह स्वास्थ्य केन्द्र इस क्षेत्र के आदिवासियों और ग्रामीणों की आशा का केन्द्र बन गया है। यहां सुदूर जंगलों में रहने वाले आदिवासी ग्रामीण सैकड़ों मील दूर से चलकर अपना इलाज कराने आते हैं।

बिलासपुर से 20 किलोमीटर दूर दक्षिण की ओर स्थित छोटे से कस्बे गनियारी में 'जन स्वास्थ्य सहयोग' नामक इस गैरसरकारी स्वास्थ्य केन्द्र की स्थापना वर्ष 1999 में हुई है। देश की मौजूदा स्वास्थ्य सेवाओं की हालत से चिंतित दिल्ली के मेधावी कुछ डॉक्टरों ने इसकी शुरूआत की है। वे देश में कई जगहों के बाद घूमते-घामते यहां पहुंचे।

इनमें से कुछ डॉक्टर दिल्ली के ऑल इंडिया इंस्टीटयूट ऑफ मेडिकल साइंस (एम्स), से निकले थे जिन्होंने यह तय किया कि वे सामुदायिक और ग्रामीण स्तर पर एक स्वास्थ्य केन्द्र विकसित करेंगे।

एम्स में काम करने के दौरान इन डॉक्टरों का सुदूर इलाकों से आए मरीजों से साक्षात्कार हो चुका था और वे उनकी बीमारियों और समस्याओं से भी वाकिफ हो गए थे। इन डॉक्टरों में कुछेक ऐसे भी थे जो अपने कार्य के अलावा झोपड़पट्टियों में जाते थे और वहां मरीजों की हालत देखकर चिंतित थे।

उन्हें अपने जीवन में कुछ सार्थक सकारात्मक काम करने और अपनी लिखाई-पढ़ाई के बदले समाज सेवा की भावना से उन ग्रामीण क्षेत्रों में जाने की जरूरत हुई, जहां ऐसे कामों की सख्त जरूरत है। उन्होंने ऐसे स्वास्थ्य केन्द्र बनाने की जरूरत महसूस की जहां कम कीमत में बेहतर इलाज किया जा सके।

इस स्वास्थ्य केन्द्र का उद्देश्य है कि ग्रामीण समुदाय को सशक्त कर बीमारियों की रोकथाम और इलाज करना। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों की स्वास्थ्य समस्याओं का अध्ययन करना, उनकी पहचान करना और कम कीमत में उनका उचित इलाज करना।

इस केन्द्र की उपयोगिता और जरूरत का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है वर्ष 2000 में बिना किसी उद्घाटन के ओपीडी शुरू हुई और मात्र तीन महीने के अंदर ही यहां प्रतिदिन आने वाले मरीजों की संख्या 250 तक पहुंच गई।

जन स्वास्थ्य सहयोग ने अपना कार्यक्षेत्र बिलासपुर जिले को बनाया है। यह जिला प्राकृतिक रूप से आरक्षित वन से आच्छादित होने के बावजूद अत्यंत पिछड़ा व निर्धन है। अचानकमार अभयारण्य यही है। यहां के अधिकांश बाशिन्दे आदिवासी और दलित हैं। यह इलाका वही है जहां से आज भी बड़ी संख्या में लोग पलायन करते हैं।

बाबा मायाराम लेखक और स्वतंत्र पत्रकार हैं।

पता:
पचमढ़ी रोड, पिपरिया, जिला होशंगाबाद (मप्र)

फोन:
09424437330

babamayaram
@gmail.com

बिलासपुरिया मजदूर देश के कई हिस्सों में जाते हैं। ये मजदूर बहुत मेहनती और सीधे-सादे माने जाते हैं, इसका अर्थ यह भी लगाया जा सकता है इन्हें आसानी से बुद्धू बनाकर ठगा जा सकता है । गाहे-बगाहे इस तरह के समाचार आते रहते हैं।

यहां उल्लेखनीय है कि हरित क्रांति के आरंभिक दिनों से एक रेलगाड़ी बिलासपुर-अमृतसर एक्सप्रेस यहां के मजदूरों को पंजाब ले जाने के लिए आरंभ की गई थी। यह रेलगाड़ी आज भी चलती है और बड़ी संख्या में काम की तलाश में अधिकांश मजदूर इसी रेलगाड़ी से बाहर जाते हैं। लेकिन जहां भी जाते हैं, वहां स्वास्थ्य की देखभाल नहीं हो पाती। वे कई-कई महीनों तक बीमारी की हालत में काम करते रहते हैं। और जब घर लौटते हैं तब तक बीमारी बढ़ जाती है। ऐसी कई गंभीर बीमारियों के मामले भी इस स्वास्थ्य केन्द्र में आते रहते हैं।

जन स्वास्थ्य सहयोग का स्वास्थ्य कार्यक्रम मोटे तौर पर त्रिस्तरीय है। ग्रामीण स्तर पर महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता, सुदूर क्षेत्रों में तीन उप स्वास्थ्य केन्द्र (मोबाइल क्लिनिक) और गनियारी में प्रमुख अस्पताल। सामुदायिक ग्रामीण स्तर पर चलने वाला कार्यक्रम 70 गांवों में चलाया जा रहा है। इन गांवों में से सिर्फ कुछ ही गांव सड़क संपर्क से जुड़े हैं और बाकी गांव दूरदराज और अंदर जंगल के हैं।

गावों में महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता

ये महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता गांव की होती हैं और हमेशा ग्रामीणों के बीच रहती हैं। इस कार्यक्रम से 100 महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता जुड़ी हुई हैं। वे बीमारियों की रोकथाम से लेकर छोटी-मोटी बीमारियों का इलाज भी करती हैं। साथ ही जरूरत पड़ने पर वरिष्ठ चिकित्सकों से सलाह और इलाज के लिए मरीजों को स्वास्थ्य केन्द्र गनियारी भेजती हैं। वे कुपोषण, मलेरिया, टीबी आदि बीमारियों की रोकथाम के लिए दवाईयां और उचित सलाह देती हैं।

वे ग्रामीणों को मलेरिया जैसी बीमारियों से बचने के लिए गांवों के आसपास गड्ढों आदि को पाटने में मदद करती हैं जिसमें मलेरिया न फैले। वे अपने साथ ग्रामीणों को ले जाकर ऐसे गड्ढों या ठहरे पानी को दिखाती हैं जहां मलेरिया का मच्छर पनपता है।

महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का चयन का आधार स्कूली शिक्षा नहीं है, बल्कि ग्रामीणों के साथ व्यवहार में मिलनसारिता, गांव की सेवा और सहयोग की भावना को ही स्वास्थ्य कार्यकर्ता बनने की योग्यता माना जाता है। इस कार्यक्रम से जुड़ी अधिकांश कार्यकर्ताएं अशिक्षित या अल्पशिक्षित हैं पर वे चिकित्सकों की सतत देखरेख और प्रशिक्षण के चलते आज बखूबी स्वास्थ्य कार्यकर्ता का काम कर रही हैं। उन्हें पोस्टर, पर्चे आदि की सामग्री के माध्यम से प्रशिक्षित किया जाता है। वे थर्मामीटर से बुखार नापने से लेकर मलेरिया और ब्लड प्रेशर की जांच कर लेती हैं। वे बच्चों का वजन लेती हैं। स्थानीय खाद्य पदार्थों व पोषण प्रदान करने वाले फल-फूलों

इंसान की सेहत, खेती की सेहत

स्वस्थ रहने के लिए लोगों को अच्छा भोजन मिले, इसके लिए खेती में भी हस्तक्षेप करना जरुरी है। यह मानकर जन स्वास्थ्य सहयोग ने अपने एक डेढ़ एकड़ की भाटा (कमजोर) जमीन पर बिना रासायनिक वाली जैविक खेती शुरु की। आज यहां धान की डेढ़ सौ से ज्यादा किस्में संग्रहित हैं। इसके अलावा ज्वार की तीन, मड़िया की छह, गेहूं की छह और अरहर की छह देशी किस्में हैं। चना, अलसी, कुसुम, मटर, भिंडी आदि देशी किस्में भी हैं।

रंग-बिरंगे देशी बीज न केवल सौंदर्य से भरपूर हैं बल्कि स्वाद में भी बेजोड़ हैं। वे औषधि गुणों से संपन्न हैं और स्थानीय मिट्टी, पानी और हवा के अनुकूल हैं। इस प्रयोग की शुरुआत से जेकब नेल्लीथानम जुड़े हुए हैं, जो बाबा आमटे से प्रभावित होकर केरल से आए थे। वे बरसों से जैविक खेती के प्रयोगों से जुड़े हुए हैं। उन्होंने छत्तीसगढ़ में विश्व प्रसिद्ध डॉ. आरएच रिछारिया के साथ भी काम किया है। उन्होंने रिछारिया कैंपेन के नाम से देशी बीजों के संरक्षण और संवर्धन का अभियान चलाया हुआ है। अब जन स्वास्थ्य सहयोग के दो कार्यकर्ता होमप्रकाश और महेश शर्मा इस काम को आगे बढ़ा रहे हैं। गनियारी स्थित कृषि फार्म में होमप्रकाश ने और बिलासपुर जिले के कोटा-लोरमी विकासखंड के गांवों में महेश शर्मा ने जैविक खेती के काम को फैलाया है।

होमप्रकाश ने बताया कि यहां पर धान की कई किस्में हैं जिनमें हरून धान 60 से 90 दिन वाली, मध्यम 90 से 120 दिन वाली और गहरून 120 से 145 दिन वाली हैं। वे अलग-अलग किस्म की मिट्टी वाली जमीन में होती हैं। नई मेडागास्कर पद्धति के प्रयोग से देशी धान का उत्पादन औसत धान से दोगुना तक पाया गया। यहां हुए प्रयोग में प्रति एकड़ 40 क्विंटल तक धान हुआ है।

जब हाल ही मुझे होमप्रकाश अपने खेत में ले गए तो वे कृषि विशेषज्ञों की तरह हर बीज व पौधे का ब्यौरा दे रहे थे। वे खुद और उनकी पत्नी खेत में काम करते हैं।

ये अरहर उत्तरप्रदेश से आई है, मडिया बस्तर से। कुसुम से तेल निकलता है और काबुली चना का दाना बड़ा होता है। धान की कई किस्में सुगंधित हैं और कई बिना पानी वाली। मुंगलानी पौष्टिक होता है और ज्वार की रोटी हाजमे के लिए बहुत अच्छी मानी जाती है।

खेत में मेढ़ पर अरहर के पौधे लहलहा रहे थे। बेर के पेड़ों के नीचे बच्चे खेल रहे थे। एक खेत में सब्जियां लगी थी। मूली, भटा, टमाटर, धनिया, मिर्ची, बरबटी, प्याज और भिंडी। वे बताते हैं खेती के लिए जमीन का स्वास्थ्य भी सुधारना जरुरी है। रासायनिक खेती के कारण जमीन की उर्वरा शक्ति कमजोर होती जा रही है, उर्वर बनाने वाले सूक्ष्म जीवाणु खत्म होते जा रहे हैं और जमीन सख्त होती जा रही है।

भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए मिश्रित फसलों को खेतों में बोया जाता है। यह परंपरागत तरीका है। देश के कई इलाकों में अलग-अलग तरह की मिश्रित फसलें होती हैं। बारहनाजा, नवदान्या और उतेरा आदि पद्धति अलग-अलग जगह प्रचलित है। इसके अलावा, हरी खाद के लिए ढनढनी, सन, सोल, चरौरा आदि को बोकर फिर मिट्टी में सड़ा दिया जाता है, जिससे जमीन उत्तरोत्तर उर्वर बनती जाती है। उन्होंने बताया कि इस भाटा कमजोर जमीन को हरी खाद से ही उर्वर बनाया है।

महेश शर्मा ने बताया कि अब हमारा यह प्रयोग न केवल गनियारी में बल्कि कई गांवों में फैल चुका है। इस वर्ष 2013 में 300 किसानों ने मेडागास्कर पद्धति से धान की खेती की है, जो पूरी तरह जैविक व देशी धान बीजों से की जा रही है।

किसान कार्यकर्ता भुवन सिंह ने बताया कि धान की रासायनिक खेती में प्रति एकड़ 5-6 हजार रुपए लागत आती है और जैविक खेती में प्रति एकड़ एक से डेढ हजार रुपए। जबकि उत्पादन दोगुना मिलता है। अगर मेड़ पर पौधे लगाए तो इससे हमें लकड़ी, फल, शुद्ध हवा और जमीन को पानी, सब कुछ मिलेंगे।

बाबा मायाराम

से कुपोषण दूर करने की सलाह देती हैं। पीने के पानी की गुणवत्ता मापने के लिए एक सरल विधि से जांच करती हैं। इसे स्कूली बच्चों को भी सिखाया गया है।

महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता महिलाओं की गर्भवती जांच, ब्लड प्रेशर की जांच करती हैं। वे ओआरएस का घोल बनाती हैं। वे छोटी-मोटी जांच के लिए नमूने एकत्र कर गनियारी अस्पताल भेजती हैं। इसके लिए वे अपने गांव से गुजरने वाली प्राइवेट बसों का इस्तेमाल करती हैं।

मोबाईल क्लिनिक

मोबाइल क्लिनिक की वैन हर सप्ताह तीन उपकेन्द्रों बम्हनी, शिवतराई और सेमरिया गांव में जाती है। बम्हनी करीब 50 किलोमीटर अंदर है। अचानकमार अभयारण्य के अंदर बसे इस गांव में पहुंचना बारिश के दिनों में खासा मुश्किल है। मनियारी नदी में बाढ़ के कारण स्वास्थ्य कर्मियों को दिक्कत होती है।

मोबाइल क्लिनिक में न केवल डॉक्टर होते हैं बल्कि दवाएं, लेबोरटरी और प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की टीम होती है जो वही पर एनीमिया, मलेरिया, टीबी, पेशाब और गर्भवती की जांच उपकेन्द्रों पर ही करती है। यहां जरूरी दवाएं भी दी जाती हैं। कोई संक्रामक बीमारी फैलने पर इन उपकेन्द्रों में क्लिनिक की उपयोगिता और बढ़ जाती है।

प्रमुख अस्पताल

गनियारी में जन स्वास्थ्य सहयोग का प्रमुख अस्पताल है जहां से इन दोनों कार्यक्रमों को सहयोग देने के अलावा प्रतिदिन करीब ढाई सौ अधिक मरीजों की जांच व इलाज किया जाता है। उन्हें यहां फार्मेसी से दवा दी जाती है, जो बाजार से कम दामों पर मिलती है। यहां आने वाले ज्यादातर मरीज आदिवासी और पिछड़ा वर्ग के होते हैं।

इसके संस्थापक सदस्यों में डॉ. योगेश जैन, डॉ. अनुराग भार्गव, डॉ. रचना जैन, डॉ. रमन, डॉ. अंजु कटारिया, डॉ विश्वरूप चटर्जी, डॉ. माधुरी चटर्जी, डॉ. माधवी शामिल हैं। इसके अलावा, 80 से अधिक स्वास्थ्यकर्मी भी कार्यरत हैं, जो आसपास के गांवों के निवासी हैं।

50 बिस्तर वाले इस अत्याधुनिक स्वास्थ्य सुविधाओं से युक्त स्वास्थ्य केन्द्र में ओपीडी भी है। इस केन्द्र के संस्थापक डॉ. योगेश जैन का कहना है कि हमारा केन्द्र एक शुरूआत है, ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं का बहुत अभाव है, इस दिशा में और प्रयास करने की जरूरत है।

जन स्वास्थ्य सहयोग का कृषि कार्यक्रम भी है जिसमें देशी धान की कई किस्में संग्रहीत हैं और उनकी जैविक खेती की जा रही है। मेडागास्कर पद्धति के जरिए दोगुना उत्पादन जैसे प्रयोग हो रहे हैं। ज्वार, मडिया जैसे अनाजों के प्रयोग हो रहे हैं जो पोषण की दृष्टि से उपयोगी हैं। इस खेती को किसानों के बीच गांवों में फैलाया जा रहा है, जिससे लोगों को अच्छा पोषण मिले और वे स्वस्थ रहें।

महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का चयन का आधार स्कूली शिक्षा नहीं है, बल्कि ग्रामीणों के साथ व्यवहार में मिलनसारिता, गांव की सेवा और सहयोग की भावना को ही स्वास्थ्य कार्यकर्ता बनने की योग्यता माना जाता है। इस कार्यक्रम से जुड़ी अधिकांश कार्यकर्ताएं अशिक्षित या अल्पशिक्षित हैं पर वे चिकित्सकों की सतत देखरेख और प्रशिक्षण के चलते आज बखूबी स्वास्थ्य कार्यकर्ता का काम कर रही हैं। उन्हें पोस्टर, पर्चे आदि की सामग्री के माध्यम से प्रशिक्षित किया जाता है।

कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि जन स्वास्थ्य केन्द्र का काम कई मायनों में अनूठा है। यह केन्द्र कम कीमत में बेहतर इलाज का मॉडल तो है ही, देश के लोगों का स्वास्थ्य कैसे बेहतर हो और मौजूदा स्वास्थ्य सुविधाओं में कैसे और क्या बदलाव किया जाए, यह भी जन स्वास्थ्य केन्द्र के काम को देखकर सीखा जा सकता है। जहां गांव में जाने से आज डॉक्टर बचते हैं वहीं देश के श्रेष्ठ व संवेदनशील डॉक्टरों ने अपना कार्यक्षेत्र देश के सबसे गरीब व जरूररतमंद लोगों के बीच बनाया है, यह अनुकरणीय है।

बुजुर्गों के सम्मान के लिए

भारत डोगरा

अभाव से सर्वाधिक पीड़ित परिवार व व्यक्तियों के रूप में हमें वृद्ध व बहुत कमजोर नागरिकों से मिलवाया जाता है। पूछने पर पता चलता है कि इनके परिवारों के युवा सदस्य या तो प्रवासी मजदूर के रूप में बाहर गए हैं या वे स्वयं इतने निर्धन हैं कि अपने वृद्ध मां-बाप की उचित देखरेख नहीं कर पा रहे हैं।

इस दारुण स्थिति से बचने का एक कारगर उपाय है कि पेंशन के माध्यम से वृद्ध नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा को मजबूत किया जाए। यदि प्रत्येक वृद्ध नागरिक को प्रतिमाह लगभग 2000 रुपए की पेंशन निश्चित तौर पर मिल जाए तो इससे देश के करोड़ों वृद्ध नागरिकों को बहुत राहत मिल सकती है। इसी मांग को लेकर पिछले दो वर्षों में पेंशन परिषद ने राष्ट्रव्यापी अभियान चलाया है। पिछले वर्ष लंबा धरना देने के बाद 28 नवंबर से फिर देश के विभिन्न हिस्सों से कड़कड़ाती ठंड में दिल्ली से जंतर-मंतर पर धरना चल रहा है।

देश के कई सामाजिक कार्यकर्ताओं व जनसंगठनों ने मिलकर पेंशन परिषद को पेंशन सुधार का मुख्य मंच बनाया है। पेंशन परिषद के अनेक धरने-प्रदर्शनों व मांग-पत्रों के बाद प्रधानमंत्री डा.मनमोहन सिंह ने ग्रामीण विकास मंत्री को पेंशन सुधार की संभावनाएं तलाशने को कहा। जयराम रमेश द्वारा तैयार किए गए दस्तावेजों में स्वीकार किया गया है कि पेंशन देने वाले केंद्रीय सरकार के राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम में बहुत सुधार की जरूरत है।

पेंशन परिषद ने पेंशन सुधार के लिए मुख्य रूप से छह मांगें उठाई हैं। इसकी एक मुख्य मांग यह है कि इस समय जो न्यूनतम मजदूरी तय है, उससे आधी राशि को पेंशन देने का आधार बनाया जाए। और किसी भी हालत में कम से कम 2000 रूपए प्रतिमाह की दर से पेंशन भुगतान किया जाए।

पेंशन परिषद की यह मांग भी बहुत उचित मांग है कि गरीबी रेखा के ऊपर-नीचे के विवाद में पड़े बिना सभी वृद्ध नागरिकों को पेंशन दी जाए। इसके दायरे से केवल वे लोग बाहर रखे जाएंगे जिनके लिए पहले से इससे अधिक पेंशन तय है (जैसे कि सरकार कर्मचारी है) या वे व्यक्ति जो वृद्धावस्था में भी आयकर के दायरे में आने जितनी धनराशि कमा रहे हैं। आगे सवाल यह भी है कि कितनी आयु के व्यक्ति को वृद्ध माना जाए। सरकार 60 वर्ष व उससे अधिक आयु के लोगों को सामान्यत: पेंशन की दृष्टि से वृद्ध मानती है। पर पेंशन परिषद का मानना है कि कमजोर वर्ग के लोगों में वृद्धावस्था और पहले आरंभ होती है अत: 50 से 55 आयु वर्ग के बीच नागरिक को यह पेंशन उपलब्ध होनी चाहिए। यह

मांगें बहुत न्यायसंगत हैं और सरकारी तंत्र भी यह स्वीकार कर रहा है। जब बहस संसाधनों की उपलब्धि पर आकर ठहर गई है। पेंशन परिषद ने इस बारे में भी कई विशेषज्ञों की राय प्रस्तुत की है कि संसाधन किस तरह जुटाए जा सकते हैं।

यदि केंद्रीय सरकार भी अपने राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम में सुधार करती है 500 रुपए तक तो अवश्य बढ़ जानी चाहिए। यदि इतनी ही राशि राज्य सरकार अपनी ओर से जमा कर दे तो प्रत्येक वृद्ध नागरिक को प्रतिमाह 1000 रुपए की पेंशन तो सुनिश्चित हो ही सकती है। कम से कम फिलहाल इतना तो तय किया जाना चाहिए।

यह भी मौजूदा स्थिति में अपने आप में एक बड़ा सुधार होगा क्योंकि इस समय तो वृद्ध नागरिक

मुख्य रूप से असंगठित क्षेत्र में हैं उनमें से 10 प्रतिशत को भी 1000 रुपए की मासिक पेंशन नहीं मिल रही है। उम्मीद है कि निकट भविष्य में इस बारे में कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल हो सकती है। इसके साथ विकलांगता के आधार पर दी गई पेंशन में वे एकल महिलाओं को दी जाने वाली पेंशन में कुछ सुधार प्रस्तावित हैं जिनकी बहुत जरूरत है।

वैसे तो वृद्ध नागरिकों की भलाई के लिए बहुपक्षीय सुधार जरूरी हैं पर फिलहाल पेंशन से सामाजिक सुरक्षा की सर्वाधिक उम्मीद बनी है। सरकार व विपक्षी दलों, केंद्र व राज्य सरकारों, अधिकारियों व सामाजिक कार्यकर्ताओं सबको आपसी सहयोग से प्रयास करने चाहिए कि निकट भविष्य में यह उम्मीद पूरी हो सके। (सप्रेस)

विभिन्न राज्यों में वृद्धावस्था पेंशन

राज्य	राशि (रु. प्रति माह)	उम्र पात्रता (से ऊपर)	वार्षिक आय पात्रता (रु. से नीचे)
आंध्रप्रदेश	200	65	गरीबी रेखा
असम	250	65	गरीबी रेखा
बिहार	200	60-64	व्यक्तिगत 5000 (ग्रामीण), 5500 (शहरी)
छत्तीसगढ़	200	60	बेसहारा
गोवा	2,000	60	सबको
गुजरात	200	60	2,400
हरियाणा	500	60	2 लाख
हिमाचल प्रदेश	500	60	व्यक्तिगत 9000, परिवार 25,000
जम्मू एवं कश्मीर	200	55(स्त्री), 60 (पु.)	शून्य आय
झारखंड	400	60	व्यक्तिगत 5,000 (ग्रामीण) 5,000 (शहरी)
कर्नाटक	400	60	परिवार 20,000
केरल	500	65	परिवार 11,000
मध्यप्रदेश	275	60	बेसहारा
महाराष्ट्र	600	64-65	21,000
ओड़िशा	200	60	12,000
पंजाब	250	58 (स्त्री), 65 (पु.)	व्यक्तिगत 12,000, दोनों 18,000, बेटा 36,000
राजस्थान	500	55 (स्त्री), 58 (पु.)	नियमित आय नहीं
तमिलनाडू	1,000	65	गरीबी रेखा
उत्तरप्रदेश	400	60-64	12,000
पश्चिम बंगाल	400	60 (स्त्री), 65 (पु.)	गरीबी रेखा
दिल्ली	1,000	60	परिवार 60,000

नोट : भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही इंदिरा गांधी वृद्धावस्था पेंशन योजना के तहत गरीबी रेखा से नीचे के 60 बरस से ऊपर के वृद्धों को 200 रु. प्रतिमाह और 80 या 80 से ऊपर के वृद्धों को 500 रु. पेंशन राशि का प्रावधान किया गया है और राज्य सरकारों से अपेक्षा की गई है कि इसमें अपना अंशदान जोड़ें। कई राज्य सरकारों ने अलग-अलग मात्रा में जोड़ा है और पात्रता का विस्तार किया है, लेकिन कुछ ने नहीं भी जोड़ा है। इनमें बेहतर योजनाएं गोवा, तमिलनाडू, राजस्थान, महाराष्ट्र, दिल्ली और हरियाणा की मानी जा सकती हैं।

शिक्षा पर गोष्ठी

नवल किशोर प्रसाद

विद्यार्थी युवजन सभा और स्टूडेन्ट्स फेडरेशन ऑफ इंडिया (एसएफआई) की पूर्वी चंपारण जिला इकाईयों के संयुक्त तत्वावधान में शिक्षा पर एक गोष्ठी आयोजित की गई। स्थानीय उगम पांडेय कॉलेज के सभागार में गत 8 सितंबर को वैश्वीकरण के दौर में शिक्षा विषयक विचार गोष्ठी हुई। जिसमें मुख्य वक्ता के रूप में वरिष्ठ समाजवादी विचारक सच्चिदानंद सिन्हा उपस्थित थे। साथ ही गोष्ठी में युवाओं की अच्छी शिरकत थी।

गोष्ठी को संबोधित करते हुए श्री सिन्हा ने कहा कि मानव सभ्यता का इतिहास बताता है कि किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था वहां के सामाजिक ढांचे को दर्शाती है। अपने भारतीय समाज में पहले वर्ण व्यवस्था कायम थी और उक्त व्यवस्था के तहत शिक्षा ब्राह्मण वर्ण के लोगों के लिए आरक्षित थी। अगर निम्न वर्ण के लोगों ने परंपरा का उल्लंघन कर कभी उन्नत शिक्षा ग्रहण कर ली जो ब्राह्मणों और राजपुत्रों के लिए ही सुलभ थी, तो उन्हें दंड मिलता था। महाभारत में कर्ण और एकलव्य के उदाहरण सर्वविदित हैं। आगे चलकर वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में परिणत हो गई।

इस व्यवस्था में ऊंची जाति के लोगों का ही शिक्षा पर दबदबा रहा, निम्न जाति के लोगों के लिए यह एक कठिन चीज थी। आज की पूंजीवादी व्यवस्था में शिक्षा पूंजीपतियों की गिरफ्त में चली गई है। इस क्षेत्र में निजीकरण को इतना बढ़ावा दिया जाने लगा है कि शिक्षा अब बाजार की वस्तु हो गई है। आपके पास जितना अधिक पैसा है उतनी बढ़िया शिक्षा आप अपने बच्चों को दिलवा सकते हैं। चूंकि हमारा समाज विषमता मूलक है, इसलिए विषमता को प्रोत्साहित करने वाली शिक्षा व्यवस्था है। समाज के ढांचे में जब तक बदलाव नहीं होगा, एक समान शिक्षा की बात करना बेमानी है। पूंजीवादी व्यवस्था के विकल्प के तौर पर दुनिया में खासकर पूर्वी यूरोप के देशों में साम्यवादी व्यवस्था कायम हुई तो लोगों को लगा था कि समाज का अब कायाकल्प होगा। लेकिन ये व्यवस्थाएं भी धराशाई हो गईं। क्योंकि इन्होंने भी उसी औद्योगिक विकास के मॉडल को अपना लिया जो पूंजीवादी देशों में था। यह विकास का मॉडल पूरी तरह मान और प्रकृति विरोधी है। हमें क्यूबा के विकास से सीख लेनी चाहिए, साम्यवादी व्यवस्था के तहत उसने अपना मॉडल अपनाया और आज विलक्षण देश बन गया है। चीन इस मामले में अपना आदर्श रूप खो चुका है क्योंकि वह पूंजीवादी रास्ते पर चल पड़ा है।

गोष्ठी का संचालन करते हुए अधिवक्ता रामजय प्रताप ने कहा कि वैश्वीकरण शब्द इतना मोहक है कि गोष्ठी का विषय देखकर ऐसा आभास होता है कि शिक्षा का वैश्वीकरण हो रहा है। कभी सारी दुनिया में एक समान शिक्षा दी जाएगी। लेकिन यह वैश्वीकरण दरअसल शिक्षा के बाजारीकरण और निजीकरण को बढ़ावा देने वाली नीति है। सामाजिक कार्यकर्ता सत्या यादव ने कहा कि लोकतंत्र में शिक्षा और रोजगार सबको सुलभ होना चाहिए। आज की शिक्षा प्रतियोगिता को बढ़ावा देती है और प्रतियोगिता से हिंसा का जन्म होता है।

अधिवक्ता नवल किशोर प्रसाद जो इस कार्यक्रम के संयोजक भी थे, ने अपने संबोधन में कहा कि हमें समान शिक्षा को धरातल पर उतारने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ेगा क्योंकि हमें सत्ता और पूंजीपति दोनों से लड़ना है। गोष्ठी की अध्यक्षता कर रहे डा.कर्मात्मा पांडेय प्राचार्य उगम पांडेय कालेज, ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि सचमुच आज शिक्षा पूंजीपतियों और उद्योगपतियों की गिरफ्त में चली गई है, वे ही इसकी नीतियां गढ़ते हैं और सरकारें उनके इशारे पर नाचती हैं। समतामूलक समाज का सपना एक समान शिक्षा नीति के लागू होने से कुछ साकार हो सकता है। मूल्यों में ह्रास गलत शिक्षा का ही परिणाम है।

संगोष्ठी में बेतिया और मुजफ्फरपुर से भी सजप के साथी पहुंचे थे।

जहर उगलती कंपनी और लाठी बरसाती पुलिस

विमल भाई

5 दिसंबर को केरल उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में कहा कि एनजीएल कंपनी 'नियंत्रित उत्पादन' कर सकती है। चूंकि अभी तक की तमाम समितियों ने कहा है कि प्रदूषण है इसलिए नेशनल एंवायरनमेंटल इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट (नीरी) से जांच कराई जाए। नीरी की रिपोर्ट दो महिने में आ जानी चाहिए। कंपनी के गेट के बाहर धरना जारी है। एक नवंबर से 2 सत्याग्रही अनिश्चित कालीन भूख हड़ताल पर बैठे हैं। 7 नवंबर को पुलिस ने स्वस्थ्य बिगड़ने पर उन्हें उठाया तो 2 अन्य लोग बैठे। 11 नवंबर को केरल के उद्योगमंत्री ने कहा हम कंपनी को इस तरह नहीं चलने देंगे। वह मशीनें बदले और प्रदूषण रोके।

केरल उच्च न्यायालय के आदेश बहुत मजेदार हैं। पहले जब कंपनी को लोगों के आंदोलन से खतरा लगा तो वह उच्च न्यायालय गई और वहां से उन्हें राज्य द्वारा पुलिस सुरक्षा प्राप्त करने का आदेश मिल गया। कंपनी की तथाकथित सुरक्षा में लगी इस पुलिस ने क्या-क्या कहर ढाया ये अस्पतालों के चक्कर काटते लोग बता सकते हैं।

यह समृद्ध केरल के त्रिशूर जिले के कत्तीखुलम गांव की कहानी है। 1976 में त्रिशूर जिले के खत्तीकुडंम गांव में जापान की कंपनी के साथ जुड़ी हुई 'नीता गैलेटिन लिमिटेड' कंपनी जब चालू हुई तब से क्षेत्र का पानी, हवा, मिट्टी खराब हो रहे हैं। कैंसर फैल रहा है। एक परिवार के कई लोग मारे गए। सरकार की एक समिति का एनजीएल ने स्वयं बताया कि पास के कुओं को पानी पीने लायक नहीं है। गांव में गैस रिसाव से सांस की बीमारी फैली, स्थानीय पुलिस ने एनजीएल के खिलाफ शिकायत की है। वह केस चालू है।

21 जुलाई 2013 को एनजीएल कंपनी के इशारे पर प्रदर्शनकारियों को पुलिस ने पीटा। जानसन के 50 चोटें हैं, 6 टांके आए हैं। वे बताते हैं कि 20 जुलाई की रात हमने घोषणा की थी कि हम शांतिपूर्ण रहेंगे। लोग दूर से आए थे। हमारे हाथ खड़े थे। अहिंसक थे हम, सफेद झंडों के साथ। पुलिस ने रोका तो बैरीकेड पर हम रुके। भाषण हुए। फिर गेट के पास पहुंचे। दो-ढाई हजार लोग थे। दोपहर घोषणा हुई फिर पुलिस ने 15 मिनिट में महिलाओं को गिरफ्तार किया। फिर पानी की बौछार की गई। कंपनी का गेट खुला और 400 के लगभग पुलिस वाले अंदर से आए। उन्हें सारी रात जगाया गया था। फिर शराब दी गई थी। पुलिस ने लैपटाप, कैमरा आदि लूटा। लोगों को कई किलोमीटर तक दौड़ाया। सब पूर्व नियोजित लगता था। एक-एक आदमी को 50 लाठी मारी होगी। मैं 40 दिनों से एनजीएल के दरवाजे पर चल रहे सत्याग्रह में शामिल था। मुझे मारा और कहा भागो यहां से। कन्नूर जिले से आंदोलन की सर्पोटर 22 वर्षीय शिनी को बुरी तहर मारा है। वह दो महिने से फोटो ले रही थी। 40-50 मोटर बाइक व कारें पुलिस ने उठा ली।

अनिल कुमर पर 40 केस है। वे संघर्ष समिति के समन्वयक हैं। बताते हैं, दवाई के कैप्सूल के खोल बनाने के लिए एनजीएल कंपनी प्रतिदिन जानवरों की 96 टन हड्डी इस्तेमाल करती थी, अब 140 टन करती है। 90 टन कचरा प्रतिदिन निकलता है जिसे चालकुडी नदी में डाला जाता है। इससे प्रतिदिन पानी में आक्सीजन घटती जा रही है तथा मछली खत्म हो रही हैं। हमें कर्जा नहीं मिल रहा है। गांव में जमीन का मूल्य गिरा है। शादियां रुकी हैं, गर्भपात हो रहे हैं। 30 प्रतिशत लोगों को कैंसर, 60 प्रतिशत लोगों को दूसरी बीमारियां और 10 प्रतिशत लोगों को मानसिक अवसाद हैं।

लोगों ने बताया कि यहां चावल भी प्रदूषित होता है और गाय का दूध भी बदबू देता है। एक तालाब बनाया है जिसमें कचरा-गंदगी डालते हैं। वहां दिखाने को बांस लगाया है। कंपनी अपनी कोच्चि की फैक्टरी का ठोस कचरा भी यहीं लाकर डालती है।

21 जुलाई 2013 को शासन-प्रशासन-कंपनी

के गठबंधन द्वारा लोगों पर जुल्म की खबर के बाद देश के आंदोलनों ने एक जन आयोग बनाया जिसमें मेरे अलावा कर्नाटक उच्च न्यायालय के वकील क्लीफ्टन रोजारियो, पर्यावरण कार्यकर्ता और गंदगी की विशेषज्ञ सुश्री श्वेता नारायण, केरल वन अध्ययन संस्थान के डा टी वी संजीव, समाज विज्ञानी डा. देविका, पीयूसएल केरल के अध्यक्ष वकील पी.ए. पौरिन, लेखिका व महिला डा. सुश्री खतीजा मुमताज तथा डा. डी सुरेंद्रनाथ थे। 30 जुलाई को हम प्रभावितों से मिले और कंपनी के क्षेत्र को देखा। मजे की बात थी हम जब कंपनी के आसपास थे तो वहां बहुत अच्छी खुशबू आ रही थी। पर दोपहर होते-होते कंपनी की असली बदबू ने वहां रहना मुश्किल कर दिया। इसी हाल में लोग महीनों से वहां धरना दे रहे हैं।

31 जुलाई को हम जिलाधीश सुश्री एम.एस. जया व पुलिस कमिश्नर पी. प्रकाश व पुलिस अधीक्षक सुश्री अजीत बेगम से मिले। इनके साथ तहसीलदार थे। किसी को भी घटना पर कही कोई शर्म नहीं नजर आई। तहसीलदार का कहना था कि पुलिस के वाहनों पर हमला हुआ, तब हमने लाठी चार्ज की इजाजत दी थी। घटना 4 बजे हुई। हमारे 20 पुलिस वाले घायल हुए व 3 को चोटें आईं और ग्रामीणों में 37 लोग घायल हुए। महिला पुलिस अधीक्षक का कहना था कि पत्थर आए तो हमें भी कुछ करना था, वरना लोग पुलिस को हल्के में लेंगे। तर्क तो बड़ा शानदार दिया गया। वैसे उनके ही मुताबिक आंसू गैस पारटी थी, वाटर कैनन का इंतजाम था। किंतु इस्तेमाल क्यों नहीं किया ? इसका उत्तर उनके पास नहीं था। पुलिस की मर्यादा रक्षा के लिए लोगों पर 40 आपराधिक केस दायर किए गए हैं।

मुझे तो दिल्ली दूरदर्शन पर आया एक छोटी प्यारी सी कहानियों वाला धारावाहिक ''मालगुड़ी डेज'' याद था। और कहां ये भयानक कहानियां सुनने को मिली। तो मेरा दृष्टिकोण केरल के लिए बदल जाता पर ग्राम प्रधान सरपंच का मजबूत चेहरा सामने आता है। महिला प्रधान डेजी फ्रांसिस लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए मजबूती से खड़ी हैं। उसने अपनी पारटी के विधायक से साफ कहा, 'आप मेरे नेता हैं पर मैं अपने लोगों को नहीं छोड़ सकती'। 21 जुलाई को घटना के सारे समय प्रधान डेजी फ्रांसिस लोगों के पास ही रहीं। उसने 3 साल से एनजीएल को अनापत्ति पत्र नहीं दिया है। देखा जाए तो एनजीएल असंवैधानिक रूप से चल रही हैं।

-माटू जनसंगठन, डी-334/10, गणेश नगर,
पांडव नगर कांप्लेक्स, दिल्ली - 110092,
bhavimal@gmail.com

जैतापुर की अणु बिजली तकनालाजी पर नए सवाल

भारत सरकार महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र में जैतापुर में फ्रेंच कंपनी अरेवा से दो विशाल परमाणु बिजलीघर लगवा रही है। यह एक नई तकनालाजी है, जिसका अभी तक कोई संयंत्र चालू नहीं हुआ है। यानी इसका परीक्षण भी नहीं हुआ है। फ्रांस के अलावा फिनलैंड में उसका एक बिजली घर कई सालों से बन रहा है और विवादों से घिरा है। भारत के जैतापुर बिजलीघर की अनुमानित लागत 2007 में 33,000 करोड़ रुपयों से बढ़कर 80,000 करोड़ हो चुकी है। अगले वर्ष यह 90,000 करोड़ पर पहुंच जाएगी।

फ्रांस में इसी कंपनी का इस नई तकनालाजी से बिजलीघर फ्लेमनविले में बन रहा है, वह भी कई विवादों से घिरा है। इसे 2012 में पूरा होना था, लेकिन अब 2016 में पूरा होने की उम्मीद है। इसकी लागत 330 करोड़ यूरो के प्रारंभिक अनुमान से बढ़कर 900 करोड़ यूरो पर पहुंच गई है।

हाल ही में इस निर्माणाधीन बिजलीघर के निर्माता ठेकेदार इडीएफ कंपनी को फ्रांस के श्रम मंत्रालय और परमाणु सुरक्षा प्राधिकरण ने नोटिस दिया है और काम रोकने को कहा है। इसके केंद्रीय गुंबद में दरारें पाई गई और संयंत्र के बीच की मशीन में मानदंडों का पालन न करने के 15 मामले पाए गए। इसे मजदूरों की सुरक्षा के लिए भी खतरनाक माना गया।

द हिंदू, 18 दिसंबर 2013

संघर्ष और निर्माण

परमाणु ऊर्जा विरोधी सम्मेलन

मध्यप्रदेश, भोपाल। भोपाल में परमाणु ऊर्जा विरोधी अखिल भारतीय सम्मेलन का इस संकल्प के साथ आयोजन हुआ कि देश में किसी भी स्थान पर किसी नये परमाणु बिजलीघर के निर्माण का डटकर विरोध किया जाएगा और इसका निर्माण नहीं होने दिया जाएगा। सम्मेलन का आयोजन परमाणु ऊर्जा विरोधी जन पहल द्वारा किया गया था।

भोपाल के गांधी भवन में 1 दिसंबर को आयोजित इस एक दिवसीय सम्मेलन में देश के विभिन्न स्थानों पर चल रहे परमाणु परियोजना विरोधी आंदोलनों, वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, पर्यावरणवादियों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, ट्रेड यूनियन नेताओं तथा छात्रों व नौजवानों ने शिरकत की। सम्मेलन में 150 से ज्यादा प्रतिनिधियों ने भाग लिया। प्रतिभागियों का स्वागत करते हुए गोविंद सिंह असिवाल ने कहा कि यह वही शहर है जहां आज से 29 साल पहले, 2-3 दिसंबर 1984 की दरमियानी रात, दुनिया का सबसे बड़ा और सबसे भयानक औद्योगिक हादसा हुआ था। भोपाल की जनता गैस कांड के दुष्परिणामों से आज तक जूझ रही है। उन्होंने उम्मीद जाहिर की कि यह सम्मेलन परमाणु ऊर्जा के विरोध में स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाएगा।

उद्घाटन सत्र में शिक्षा अधिकार मंच भोपाल के संयोजक डॉ. अनिल सदगोपाल ने सम्मेलन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि अमरीका द्वारा जापान के हिरोशिमा और नागाशाकी में गिराए गए परमाणु बमों से इन हथियारों की बर्बरता पहले ही जाहिर हो चुकी है। लेकिन अमरीका के थ्री माइल आईलैंड, उक्रेन (पूर्व सोवियत संघ) और अभी हाल में जापान के फुकुशिमा में परमाणु बिजलघरों के रिएक्टरों में हुए हादसों ने साबित कर दिया है कि परमाणु संयंत्रों से निकलने वाले रेडियो एक्टिव कचरे को सुरक्षित ठिकाने लगाने का अब तक कोई उपाय नहीं है। इसलिए परमाणु ऊर्जा के इस्तेमाल पर रोक लगाने के लिए परमाणु ऊर्जा विरोधी ताकतों को एकजुट करने और देशव्यापी आंदोलन छेड़ने के मकसद से आयोजित यह सम्मेलन एक महत्वपूर्ण कदम है।

उद्घाटन सत्र को संबोधित करते हुए पर्यावरण संरक्षण के लिए सक्रिय रूप से कार्यरत सौम्य दत्ता ने किसी भी क्षेत्र में परमाणु ऊर्जा के इस्तेमाल पर रोक लगाने के लिए ताकतवर आंदोलन छेड़ने का आव्हान किया। साथ ही, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि जनपक्षीय नजरिए से अक्षय ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों को विकसित करने की जरुरत है। जनपक्षीय ऊर्जा नीति बनाने के लिए यह सवाल उठाया जाना चाहिए कि ऊर्जा किसके लिए ? जनवादी अधिकार संरक्षण समिति के महासचिव सी भास्कर राव ने आंध्र प्रदेश में 1986 में हुए आंदोलन के अनुभवों को सामने रखा। उन्होंने कहा कि उस समय नागार्जुन सागर बांध के निकट प्रस्तावित परमाणु परियोजना को ताकतवर आंदोलन के जरिए जनता ने शिकस्त दी थी। जनता के इच्छा के खिलाफ उन पर परमाणु हथियार या परमाणु संयंत्र लादना अलोकतांत्रिक कदम है और सरकार के ऐसे प्रतिगामी कदम परास्त करने के लिए सभी जनवादपसंद ताकतों को एकजुट होना चाहिए। उद्घटन सत्र की अध्यक्षता कर रहे धर्म निरपेक्ष मंच के लज्जाशंकर

हरदेनिया ने परमाणु ऊर्जा विरोधी ताकतों की व्यापक एकता कायम करने का आव्हान किया।

सम्मेलन के द्वितीय सत्र में चुटका (मध्यप्रदेश), जैतापुर एवं तारापुर (महाराष्ट्र), कोवाडु (आन्ध्रप्रदेश), गोरखपुर (हरियाणा) तथा मीठी विर्दी (गुजरात) में परमाणु बिजलघर विरोधी आंदोलनों का नेतृत्व कर रहे प्रतिनिधियों ने अपने अनुभवों को साझा किया। उन्होंने बताया कि परमाणु प्रतिष्ठानों द्वारा झूठा प्रचार किया जा रहा है तथा सरकार द्वारा दमनकारी रास्ता अपनाया जा रहा है। इसके बावजूद, तमाम चुनौतियों का सामना करते हुए जन संघर्ष आगे बढ़ रहा है।

परमाणु ऊर्जा के खिलाफ अखिल भारतीय सम्मेलन ने जापान सरकार के साथ परमाणु समझौते पर हस्ताक्षर के प्रयासों का कड़ा विरोध किया। सम्मेलन ने सभी परमाणु विरोधी आंदोलनों और आम जनता से 24-25 जनवरी, 2014 को इन मांगों को लेकर विरोध दिवस पालन करने की अपील की।

विजय

सादगी और सिद्धांत के साथ चुनाव में भागीदारी

मध्यप्रदेश, इटारसी/हरदा/बैतूल। मध्यप्रदेश में हुए विधानसभा चुनावों में समाजवादी जन परिषद ने चार विधानसभा क्षेत्रों में अपने उम्मीदवार खड़े करने का फैसला किया था- सिवनी मालवा (जिला होशंगाबाद)- फागराम, हरदा-शमीम मोदी, टिमरनी (जिला हरदा) रामदीन और घोड़ाडोंगरी (जिला बैतूल)- मंगल सिंह। इनमें से तीन उम्मीदवार आदिवासी थे, हालांकि दो ही सीटें आरक्षित थी। सिवनीमालवा क्षेत्र अनारक्षित है।

चुनाव लड़ने के लिए पार्टी ने चार नियम बनाए थे। **एक,** सादगी से चुनाव लड़ेंगे और चंदे व खर्च का पूरा हिसाब जनता के बीच रखेंगे। **दो,** मतदाताओं के बीच दारू, पैसे या अन्य प्रलोभन की वस्तुएं नहीं बांटेंगे। **तीन,** जाति या धर्म के आधार पर वोट नहीं मांगेंगे। **चार,** झूठे वायदे नहीं करेंगे।

सिवनी मालवा विधानसभा क्षेत्र में फागराम को 6565 वोट प्राप्त हुए और कांग्रेस-भाजपा के बाद वे तीसरे स्थान पर रहे। पूरे होशंगाबाद जिले के चारों विधानसभा क्षेत्रों में कांग्रेस-भाजपा के बाद फागराम को ही सबसे ज्यादा वोट मिले। चुनाव के चंदे के लिए 50 रुपए, 100 रुपए और 500 रुपए के कूपन छापे गए थे और गांव-गांव में चंदा हुआ। कुल मिलाकर 35,896 रुपए का चंदा गावों से हुआ, 27,600 रुपए का चंदा शहरों में हुआ और दो आमसभाओं के बाद गमछा फैलाकर 2620 रुपए का चंदा किया गया। पार्टी की अन्य प्रांतीय इकाईयों व बाहर से दस हजार रुपए का सहयोग मिला। कुल मिलाकर चुनाव में 77 हजार रुपए खर्च हुए।

इस क्षेत्र के चुनाव में दो आमसभाएं की गई और जुलूस निकाले गए। एक आमसभा को दिल्ली से आए सोशलिस्ट पार्टी (इंडिया) के राष्ट्रीय महामंत्री डा.प्रेमसिंह ने संबोधित किया। उम्मीदवार फागराम ने पूरा प्रचार मोटर साईकिल पर हेंडमाइक से किया। प्रचार में दो चार-पहिया वाहन बाद में इस्तेमाल किए गए। प्रचार में ग्रामीण और शहरी महिलाओं ने भी उत्साह के साथ भाग लिया। एक नुक्कड़ नाटक भी बनाया गया, जिसके करीब पंद्रह प्रदर्शन किए गए।

सिवनी मालवा चुनाव में कुल सात तरह के 71 हजार परचे निकाले गए। कई परचों में स्थानीय मुद्दों के साथ व्यापक मुद्दे भी उठाए गए। हरदा जिले में टिमरनी विधानसभा क्षेत्र में रामदीन को 2,372 वोट मिले, 6,000 रु. स्थानीय चंदा हुआ और 14,000 रु. चंदा हुआ था 52,000 रु. खर्च हुए। यहां से बदनाम व दागी भाजपा विधायक एवं पूर्व मंत्री कमल पटेल चुनाव हार गया। ऐसा प्रतीत होता है कि मतदाताओं ने उसे हराने का मन बनाकर मतों का ध्रुवीकरण कांग्रेस के पक्ष में किया। बैतूल जिले के घोड़ाडोंगरी क्षेत्र से मंगल सिंह को 1536 वोट मिले, 20,480 रु. चंदा हुआ और करीब इतना ही खर्चे हुआ। टिमरनी व घोड़ाडोंगरी में पूरा प्रचार मोटर साईकिलों से, साईकिलो से और पैदल किया गया।

-राजेन्द्र गढ़वाल

युवाओं की बदलाव रैली

राजस्थान,उदयपुर। 'सारी दलगत पार्टियां और चुनाव आयोग मिलकर हर पांच वर्ष में चुनाव का उत्सव करते हैं पर संपूर्ण व्यवस्था नीचे से ऊपर तक सड़ गई है। चुनावों से मूल समस्याओं का समाधान नहीं होगा।' ये विचार जागरुक युवा संगठन के ग्यारहवें सम्मेलन में बोलते हुए पत्रकार उग्रसेन राव ने व्यक्त किए।

मुख्य अतिथि उग्रसेन राव ने मूल समस्याओं के हल के लिए व्यवस्था बदलने का आव्हान किया तथा हर गांव में समान्तर लोक पंचायतें गठित कर नई व्यवस्था बनाने की जरुरत बताई। सम्मेलन के विशेष अतिथि वीरेंद्र बंसल ने बदलाव में युवाओं की भूमिका की चर्चा की तथा मोतीलाल तेजावत के हर क्षेत्र में संघर्ष तेज करने की जरुरतें बताई।

सम्मेलन की शुरुआत करते हुए जागरुक युवा संगठन के अध्यक्ष शंकर परमार ने सत्ता हस्तांतरण के 66 साल बाद भी जनता की हालत बिगड़ने के लिए धनपतियों के हित में बनाई नीतियों को जिम्मेदार बताया।

सम्मेलन में संगठन के सचिव प्रभुलाल खराडी ने वर्ष भर की रिपोर्ट प्रस्तुत की। संगठन के पूर्व संरक्षक एहसान खान ने वोटों के लिए फिरने वाली पार्टियों से कोई उम्मीद नहीं रखने की जरूरत बताई। जनवादी मजदूर यूनियन के जिला अध्यक्ष डालचंद मेघवाल ने हर प्रकार के श्रमिकों की यूनियन बनाने की जरूरत बताई। सभा में अरावली किसान संगठन, मजदूर हक संगठन तथा शिक्षक संगठन के प्रतिनिधियों ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

रैली खेरवाड़ा के स्कूल मैदान से रवाना होकर बस स्टैंड बाजार, निचले खेरवाड़ा, मोचीवाड़ा, मोगिया बस्ती तथा रानी रोड चौराहा होते हुए पुन: खेल मैदान जाकर समाप्त हुई जहां आदिवासी युवाओं ने परंपरागत वाद्य बजाते हुए नेताओं और चुनावों की पोल खोलने वाले गीत गाए और नृत्य किया।

रैली के दरम्यान मोचीवाड़ा तथा रानी रोड चौराहे पर नुक्कड़ सभाएं कर व्यवस्था विरोधी आंदोलन तेज करने का आह्वान किया। सभा को मजदूर हक संगठन के सचिव शांतिलाल डामोर तथा जागरुक युवा संगठन के अध्यक्ष शंकर परमार ने संबोधित किया। सम्मेलन का संचालन संगठन के उपाध्यक्ष प्रवीण भगोरा ने किया।

-प्रभुलाल खराडी

कैमोर पहाड़ को बचाने की याचिका

मध्यप्रदेश,सीधी। टोको-रोको-ठोको क्रांतिकारी मोर्चा के संयोजक उमेश तिवारी ने बताया कि सीधी जिले एवं सतना जिले का लगभग 500 एकड़ का कैमोर पहाड़ का वन खण्ड जे.पी.एसोसिएट को सीमेंट बनाने के लिए चोरी चुपके कायदा कानून की धज्जी उड़ाते हुए दे दिया गया है। उमेश तिवारी एवं मझिगवां निवासी हरिशंकर तिवारी द्वारा उच्च न्यायालय जबलपुर में जनहित बाद दायर कर न्यायालय से कैमोर पहाड़ की खुदाई पर रोक लगाने, वृक्षों की कटाई पर रोक लगाने पर प्राकृतिक संपदा के विनाश के षड़यंत्रकारियों के खिलाफ कार्यवाही की मांग की थी, जनहित याचिका सुनवाई करते हुए उच्च न्यायालय ने 27 नवंबर 2013 को निर्णय किया कि याचिकाकर्ताओं के प्रकरण को ग्रीन ट्रिब्यूनल भोपाल को भेजा जा रहा है। ग्रीन ट्रिब्यूनल शीघ्र सुनवाई जनहित को ध्यान में रखते हुए निर्णय करेगा।

उमेश तिवारी ने आगे बताया कि सरकार एवं प्रशासन का यह निर्णय जो कैमोर पहाड़ को पीस कर सीमेंट बनाने के लिए जे.पी. एसोसिएट के पक्ष में किया गया है वह नियम विपरीत तो है ही निंदनीय भी है। क्योंकि इस निर्णय से एक व्यक्ति के वैभव को तो साम्राज्य खड़ा हो सकता है लेकिन मनुष्य के साथ अन्य जीवों के वजूद के लिए संकट पैदा होगा। श्री तिवारी ने बताया कि कैमोर पहाड़ को नष्ट किए जाने से पर्यावरण सहित पहाड़ से गरीबों को मिलने वाला ईंधन तथा होने वाली उदर पोषण की व्यवस्था समाप्त होगी। अनमोल जड़ी-बूटियां भी समाप्त हो जाएंगी और कैमोर पहाड़ में रह रहे वन्य जीव भी प्रभावित होंगे। श्री तिवारी ने कहा कि कैमोर पहाड़ के विनाश से आने वाली भयावहता को समझते हुए कैमोर को बचाने के लिए राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, सांसद, विधायक आदि जनप्रतिनिधियों को पत्र लिखकर कैमोर बचाने का आग्रह किया गया। लेकिन अब तक कोई सुनवाई नहीं हुई है। उल्टे आंदोलनकारियों की गिरफ्तारी जैसी दमनात्मक कार्रवाई हुई है।

उमेश तिवारी ने सीधी जिले के बुद्धिजीवियों, व्यापारियों, किसानों से अपील की है कि कैमोर पहाड़ को बचाने में आगे आएं। उल्लेखनीय है कि छुहिया घाटी जो सीधी जिले का भाग है, उसमें पहला सफेद शेर मिला था, जो दुनिया में सीधी को पहचान दे रहा है दूसरी तरफ कैमोर की तलहटी भवरसेन इतिहास कवि बाणभट्ट की तपोभूमि रही है। कैमोर पहाड़ मार्कन्डेय ऋषि का साधना स्थल रहा है। इन सब के साथ कैमोर प्रकृति की धरोहर है। प्रकृति की धरोहर नष्ट हो जाने पर जीवन की कल्पना कैसे की जा सकती है ?

-उमेश तिवारी

समता साथी संगम की बैठक

उत्तरप्रदेश, वाराणसी। पिछले 30-35 वर्षों में हजारों छोटे-बड़े आंदोलन हुए परंतु जनतंत्र-समता-न्याय के पक्षधर साथियों के विविध प्रयासों के बावजूद जनांदोलन का राजनीतिकरण न होने के फलस्वरूप व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में जनांदोलन की एकजुटता नहीं बन पाई। ऐसी स्थिति में साथियों ने यह निश्चय किया कि जनतंत्र-समता-न्याय के पक्षधर साथियों, जो देश के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग राजनीतिक संगठनों/समूहों/दलों या गैरदलीय संगठनों/ समूहों में रचना और संघर्ष को बढ़ाने में लगे हैं, की एक विस्तारित बैठक बुलाई जाए। इस उद्देश्य से 24-25 अगस्त को संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में बैठक संपन्न हुई।

इस बैठक में 'समता-साथी-संगम' की स्थापना की गई। एक साल के अंतराल पर साथियों का समागम होगा। अगला समागम सिवान, बिहार में होगा जिसकी जिम्मेदारी साथी घनश्याम ने ली है। समता-साथी-संगम को विस्तारित करने एवं कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए अगले समागम तक संयोजक के रूप में साथी सोमनाथ त्रिपाठी को अधिकृत किया गया। किशन पटनायक सामाजिक शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान बनाने हेतु नियमावली बनाने, कानूनी प्रक्रिया पूरी करने एवं उसके संपादन-प्रकाशन के लिए बजरंग सिंह को अधिकृत किया गया। वे साथियों से प्राप्त सुझावों पर आपसी राय

परामर्श कर आवश्यकतानुसार समितियों का गठन करेंगे। इस कार्य में साथीगण पूरा सहयोग करेंगे। प्रकाशन के लिए संसाधन जुटाने के लिए जिन साथियों का नाम बैठक में प्रस्तुत हुआ है उसको विस्तारित करते हुए उनसे सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जाए। अगले समागम तक साथियों की एक समता डायरेक्टरी बनाई जाए। जनतंत्र-समता-न्याय के पक्षधर सभी साथी, यदि किसी भी संगठन/समूह/व्यवस्था परिवर्तनवादी दल/ संस्थान के माध्यम से रचना/ आंदोलन/ विचार निर्माण का काम कर रहे हैं, वे सभी एक दूसरे के साथ संपर्क एवं संवाद स्थापित करेंगे और एक दूसरे के आंदोलन में हिस्सेदारी करेंगे। इसके लिए समता-साथी-संगम ने अपील की है।

संगम में सूचना दी गई कि 'सामयिक वार्ता' पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है इस समय इसका प्रकाशन इटारसी (म.प्र.) से हो रहा है। सभी साथियों को इसका पाठक बनना चाहिए एवं अन्य साथियों को पाठक बनाकर सामयिक वार्ता का सहयोग करना चाहिए। अंत में इस समागम के आयोजक सोमनाथ त्रिपाठी ने सभी साथियों एवं इसकी व्यवस्था में सहयोगी सभी के प्रति आभार व्यक्त किया।

-सोमनाथ त्रिपाठी

अस्पताल में अव्यवस्था के खिलाफ धरना

बिहार, औरंगाबाद। जिला मुख्यालय के सदर अस्पताल में कुव्यवस्था, चिकित्सकों की संवेदनहीनता एवं दवाओं की खरीद में व्यापक पैमाने पर हुए घपले-घोटाले के विरूद्ध 14 नवंबर को समाजवादी जनपरिषद की जिला शाखा द्वारा धरना दिया गया। यह धरना 1942 अगस्त क्रांति शहीद जगतपति प्रतिमा स्थल-सह-पार्क औरंगाबाद में दिया गया। औरंगाबाद शहर के बीचों-बीच दिल्ली-कोलकाता राष्ट्रीय राजमार्ग है जो अब 'फोर लेन' है। इस पर प्रत्येक दिन हजारों की संख्या में छोटी-बड़ी गाड़ियों का चलना होता है जिस क्रम में प्राय: रोज ही दुर्घटनाएं होती रहती हैं जिसका मामूली उपचार भी सदर अस्पताल में संभव नहीं है। घायलों को इलाज के लिए पटना या गया रेफर कर दिया जाता है जिसमें कईयों की मौत रास्ते में ही हो जाती है।

सदर अस्पताल औरंगाबाद में पदस्थापित कुछ चिकित्सक प्राथमिक और अतिरिक्त प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में अपनी प्रतिनियुक्ति कराकर औरंगाबाद शहर में एवं कुछ बगल के जिलों के शहर में अपना निजी अस्पताल चला रहे हैं। सदर अस्पताल में कई विभाग बंद हैं। सदर अस्पताल में बंद नेत्र विभाग, शिशुरोग

विभाग, हड्डीरोग विभाग, आउटडोर में स्पेशलिस्ट सर्जरी विभाग, हृदय रोग विभाग, खुलवाने के साथ ही साथ सभी लोगों का अलग-अलग आउटडोर प्रारंभ करने मृतप्राय: सदमा (टी.बी.) विभाग को ढंग से चलवाने और घपलों की जांच कराने की मांग की गई। धरना में जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी के नेता अशोक चक्रवर्ती प्रियदर्शी (पटना) समाजवादी जनपरिषद के पूर्व राष्ट्रीय सचिव चंचल मुखर्जी (वाराणसी) समाजवादी जनपरिषद बिहार के महामंत्री संजय कुमार श्रीवास्तव आदि वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किए।

-संजय कुमार श्रीवास्तव

उत्तर बंगाल में सजप सम्मेलन

पश्चिम बंगाल, जलपाईगुड़ी। समाजवादी जन परिषद का धूपगुड़ी ब्लाक शाखा का पांचवा वार्षिक सम्मेलन उत्तर बंगाल के भाउजाइया संगीत के जनक अब्बसुद्दीन की जन्म जयंती के मौके पर हुआ। इस अवसर पर अब्बसुद्दीन के जीवन व संगीत के बारे में चर्चा हुई।

सम्मेलन में राजनीतिक प्रस्ताव ब्लाक शाखा के मंत्री सुभाष राय ने पेश किया। प्रस्ताव में धान का दाम

5000 रुपए प्रति क्विंटल तय करने, रोजमर्रा के जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के दाम पर नियंत्रण करने, रासायनिक खाद और उसकी खेती पर पाबंदी लगाने, राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने,चाय बागान मजदूरों के लिए प्राविडेंट फंड और पेंशन चालू करने, कामतापुरी और सादरी भाषा सहित सभी क्षेत्रीय भाषाओं को स्वीकृति प्रदान करने और उत्तर बंग में स्वायत्त शासन लागू करने की मांग की गई। आगामी दो वर्षों के लिए नई ब्लाक कमेटी का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष सुभाष राय, मंत्री अमलचंद्र राय, कोषाध्यक्ष पद्म लोचन राय बने। कमेटी में पांच महिला सदस्यों को मनोनीत करने का निर्णय लिया गया।

एक अन्य कार्यक्रम में जलपाईगुड़ी में 21 अक्टूबर को शिक्षा विचार मंच की ओर से एक आयोजन किया गया। इसमें शिक्षा के बाजारीकरण का विरोध करते हुए समाजवादी जन परिषद के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष कमल बनर्जी और अन्य पदाधिकारियों ने जनता को संबोधित किया।

-रणजीत राय

नियमगिरि के लड़ाकों का सम्मान

मध्यप्रदेश, इटारसी। यहां 12 दिसंबर को नियमगिरि आंदोलन के स्त्री-पुरुष कार्यकर्ताओं का गमछा ओड़ाकर सम्मान किया गया। इस मौके पर 'जल-जंगल-जमीन पर कंपनियों का हमला और नियमगिरि के अनुभव' विषय पर संगोष्ठी भी की गई। इसमें लिंगराज आजाद और आंदोलन के आदिवासी नेता सिकोका लद्द ने अपने विचार प्रकट किए। नियमगिरि आंदोलन की महिला नेता कुरिसिका सुंदरी तथा अन्य 5 स्त्री कार्यकर्ताओं और पुरुष कार्यकताओं का सम्मान इस मौके पर किया गया। आयोजन सामायिक वार्ता और समता विचार मंच ने किया था।

इसकी पूर्व संध्या को 11 दिसंबर को भोपाल के रवींद्र भवन में चिंगारी ट्रस्ट द्वारा एक भव्य कार्यक्रम में कुरिसिका सुंदरी तथा नियमगिरि के अन्य कार्यकर्ताओं को चिंगारी अवार्ड दिया गया। भोपाल गैस पीड़ितों की महिला नेता रशीदा बी और चंपादेवी शुक्ला को मिले एक अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार की राशि से प्रतिवर्ष कंपनियों के खिलाफ लड़ने वाली महिलाओं को यह सम्मान दिया जाता है।

-चंद्रशेखर मिश्रा

किसानों का चेतावनी समावेश

ओड़िशा बरगढ़। ओड़िशा राज्य कृषक संगठन एवं समाजवादी जन परिषद के संयुक्त तत्वावधान में बरगढ़ में गत 6 नवंबर को किसानों का एक 'चेतावनी समावेश' आयोजित हुआ जिसमें करीब 10 हजार किसानों ने हिस्सा लिया। इस कार्यक्रम में विशेष रूप से आमंत्रित शेतकारी संघटना, महाराष्ट्र के नेता विजय जांवधिया एवं समाजवादी जन परिषद के राष्ट्रीय महासचिव सुनील ने अपने विचार व्यक्त किए।

इस अवसर पर विजय जांवधिया ने बताया कि पांचवें व छठवें वेतन आयोग के चलते समाज में सरकारी नौकरी पेशा लोगों की तनख्वाह में की गई असमानुपातिक वृद्धि से आर्थिक विषमता बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में किसानों के लिए आय वृद्धि के लिए आयोग का गठन होना चाहिए। श्री सुनील ने कहा कि किसान आंदोलनों द्वारा उठाए जा रहे मुद्दों को व्यवस्था परिवर्तन के आंदोलन से जोड़ा जाना चाहिए। उन्होंने आंदोलन से पैदा ऊर्जा को राजनैतिक ताकत में तब्दील करने की जरूरत पर जोर दिया।

इस कार्यक्रम में 10 सूत्रीय घोषणापत्र का ऐलान भी किया गया। उक्त घोषणापत्र में किसानों को धान का समर्थन मूल्य दिलाने संबंधी समस्या का समाधान, धान प्रति क्विंटल 300 रु. बोनस, किसानों की आय वृद्धि के लिए आयोग का गठन, फसल बीमा नीति में बदलाव और रिलीफ नीति में बदलाव शामिल हैं। हीराकुड बांध का पानी उद्योगों को देने संबंधी करार रद्द करने, हाइब्रिड बीज पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने, बजट का 50 प्रतिशत गांव और किसान-मजदूरों के लिए खर्च करने आदि मांग शामिल हैं।

कार्यक्रम को सजप के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष लिंगराज, रमेश पति, लिंगराज आजाद, हरबनिया, शिवप्रसाद प्रधान और रमेश महापात्र आदि ने भी संबोधित किया। गांव भारत सांस्कृतिक आंदोलन के शंकर महानंद, किशोर साहू और सरोज ने क्रांतिकारी गीत प्रस्तुत किए। कार्यक्रम की अध्यक्षता कृषक संगठन के अध्यक्ष उत्पन्न कुमार भोई और सजप के राज्य अध्यक्ष अरुण कुमार साहू ने की। **-लिंगराज**

'आप' से चंद सवाल

पहला सवालः देश की दो तिहाई जनता के लिए 'आप' के पास विकास का वैकल्पिक मॉडल क्या है? क्या वो गांधीजी की इस बात पर आधारित होगा -प्रकृति व्यक्ति की जरुरत पूरी कर सकती है, लेकिन किसे एक का भी लालच नहीं?

दूसरा सवालः 'आप' सिद्धांतवादी है या व्यवहारवादी? क्योंकि 'आप' ने अपनी वेबसाईट पर कहा है: '' 'आप' विचारधारा प्रेरित न होकर समाधान केन्द्रित है। राजनैतिक पार्टी को विचारधारा के खाके में बांधने की पुरानी परंपरा है। जिसके चलते, सब मुद्दों और उसके समाधान से भटक जाते हैं। हमारा लक्ष्य समाधान केंद्रित है. अगर हमें समस्या का हल लेफ्ट (विचारधारा) से मिलेगा तो हम उस पर विचार करेंगे। उसी तरह, अगर हमे समस्या का हल राइट (या सेंटर) में मिलेगा तो हम उस पर विचार करेंगे। विचारधारा पर उपदेश देना, तो राजनैतिक पंडितों और मीडिया का काम है''।

हमारा मानना है कि कोई भी सरकार किसी भी समस्या का हल अपनी पार्टी की विचारधारा के आधार पर ही निकालती है- उसमें आर्थिक और सामाजिक नीति सबसे महत्वपूर्ण होती है।

तीसरा सवालः आपने अपने दृष्टिपत्र में गांधी के 'स्वराज' को स्थापित करने की बात की है। आप इसे कैसे प्राप्त करेंगे? क्योंकि, गांधी का 'स्वराज' व्यवहारवाद के सिद्दांत से नहीं पाया जा सकता,उसके मूल में तो गांधी की विचारधारा छुपी है।

चौथा सवालः क्या 'आप' मानती है कि नवउदारवाद से उपजे निजीकरण के चलते भ्रष्ट्राचार बेतहाशा बढ़ा है? चाहे वो 2 जी घोटाला हो या कोयला घोटाला, बल्कि, दिल्ली की बिजली दर की समस्या की जड़ में भी क्या निजीकरण नहीं है? दृष्टिपत्र बताता है कि 'आप' नवउदारवाद की नीतियों के खिलाफ नहीं है।

पांचवां सवालः क्या 'आप' मानती है कि सामाजिक-राजनैतिक गैरबराबरी भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या है? क्या आप को अहसास है कि जमीनी स्तर पर समाज के दबे हुए तबके के अधिकार की बात करने पर टकराव पैदा होगा ही? हमारा उदाहरण देखें, तो हमने आदिवासियों के बंधुआ मजदूर होने का मुद्दा उठाया तब किसान नाराज हो गए। असंगठित मजदूरों का मुद्दा उठाया, तो व्यापारी नाराज हो गए। उसी तरह, जब 'आप' जब दिल्ली में रिक्शा चालको; भारतीय समाज की सरंचना ऐसी है कि इस टकराव से नहीं बचा जा सकता। तब आप किसके साथ होंगे?

छठवां सवालः क्या 'आप' नवउदारवाद की नीति को किसानों की आत्महत्या का कारण नहीं मानते ?

सातवां सवालः क्या आप नहीं मानते कि देश के हर बच्चे को- चाहे फिर वो प्रधानमंत्री का बेटा हो, या चपरासी या दलित और आदिवासी का - सबको एक जैसी शिक्षा देने के लिए 'समान स्कूल प्रणाली' लागू की जानी चाहिए?

आठवीं सवालः स्थापित पार्टियों में व्यक्तिवाद की परंपरा पर 'आप' क्या सोचती है? वो उससे कैसे बचेगी? 'आप' के प्रचार से लेकर वेबसाईट पर विचारों से ज्यादा अरविन्द केजरीवाल छाए रहते हैं। 'आप' के मुख-पत्र 'आप की क्रांति' के मुखपृष्ठ पर शीर्षक के साथ अरविन्द केजरीवाल का फोटो तो है ही, लगभग हर पेज पर भी अरविन्द केजरीवाल छाए हुए हैं। जैसे 1 दिसंबर 2013 के आठ पृष्ठों के अंक में सात पर उनका फोटो है। इसी तरह जनलोकपाल आंदोलन के दौरान व्यक्तिवाद को इतना ज्यादा बढ़ावा दिया कि अन्ना को गांधी का अवतार बता दिया।

नवां सवालः 'आप' अपने काम को क्रांति बता रही है। क्या यह यह गांधी, भगतसिंह, बिस्मिल, अश्फाकउल्लाह सहित उन सब लोगों के क्रांति के सपनों का अपमान नहीं है, जिनका आपने अपने दृष्टिपत्र में उल्लेख किया है? इन लोगों ने व्यवस्था के आमूलचूल परिवर्तन में 'क्रांति' की कल्पना की थी, सतही सुधार में नहीं।

इन मुद्दों पर जितनी सार्वजनिक बहस हो उतना अच्छा है। जवाब की आशा के साथ।

-अनुराग मोदी, समाजवादी जन परिषद्,
कोठीबाजार, बैतूल, फोन 09425041624
sasbetul@yahoo.com

आखिरी पन्ना

कब मिलेगा न्याय

रेणु झा

बिहार के लक्ष्मणपुर बाथे गांव का दलित टोला वर्तमान में अरवल जिले में है। वहां आज से लगभग 17 बरस पहले सन् 1997 के 1 दिसंबर की रात मानवता के विरूद्ध नंगा नाच हुआ था। गांव में वैसे भी शाम होते ही सन्नाटा पसर जाता है, उसमें भी जाड़े की ठिठुरती रात सियार-कुत्ते भी ठंड के मारे चुप्पी साध लेते हैं, वैसे ही समय में दलित टोले के झोपड़ियों में सोए परिवारों की महिलाएं, बच्चे और बूढ़ों पर दर्जनों लोगों ने हथियारों से लैस होकर हमला कर दिया था।

ताबड़तोड़ गोली-बारी होती रही, दूसरे पक्ष निहत्थे थे। चीखने के सिवा कर ही क्या सकते थे? सुबह तक 58 लाशें बच्चों, बूढ़ों, जवान और महिलाओं की बिछ चुकी थी और दर्जनों घायल हो गए थे। यह टोला सोन नदी के किनारे पड़ता है और अपराधी सोन नदी को पार कर आए थे। जाते वक्त नाविकों की भी उन्होंने हत्या कर दी थी जो बाद में जांच से पता चला।

यह घटना किसी फिल्म का 'ट्रेलर' नहीं है। इस घटना के वक्त बिहार में गरीबों-दलितों के मसीहा माने जाने वाले लालू प्रसाद यादव की पत्नी राबड़ी देवी का कार्यकाल था। 2 दिसंबर 1997 को राबड़ी देवी स्वयं घटना को देखने आई थी। तत्कालीन राष्ट्रपति आरके नारायण ने इसे राष्ट्रीय शर्म घोषित किया था। पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने मृतकों के परिवारजनों से मिलकर शोक व्यक्त किया था। उन्हें न्याय मिले इसका भी भरोसा दिया था। 2 दिसंबर को ही मेंहदिया थाना में 26 नामजद और 125 अज्ञात के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी। 2013 को आया हाईकोर्ट का फैसला चौंकाने वाला नहीं तो और क्या हो सकता है ? हाईकोर्ट का फैसला- ''लक्षमणपुर बाथे नरसंहार के सभी 26 अभियुक्त बरी।''

जिस घटना को सात अप्रैल 2010 में निचली अदालत ने जघन्य माना, 'रेयर' से 'रेयरेस्ट' माना और 26 में से 16 अपराधियों को फांसी और 10 को आजीवन कारावास की सजा सुनाई, उस घटना पर हाइकोर्ट का यह फैसला कुछ सवाल खड़े करता है-

घटना हुई थी जिसे हाइकोर्ट मानता है।

अगर मरने वालों में वे 26 नामजद अभियुक्त और 125 अज्ञात व्यक्ति शामिल नहीं थे तो फिर वे कौन व्यक्ति थे जिन्होंने घटना को अंजाम दिया ?

प्रशासन और पुलिस ने उन अपराधियों की खोज क्यों नहीं की ?

वे कौन-कौन से सबूत थे जिस आधार पर निचली अदालत ने 16 अभियुक्तों को फांसी की सजा और 10 को आजीवन कारावास की सजा सुनाई थी ?

गवाहों की संख्या 91 थी और 17 चश्मदीद गवाह थे। गवाह अभी हतप्रभ हैं कि यह क्या हो गया, उन्होंने तो अभियुक्तों की पहचान नाम से की थी।

जब 58 सोये हुए निहत्थे महिलाओं, बच्चों और बूढ़ों को गोलियों से भून देना जघन्य अपराध नहीं तो फिर जघन्य की क्या परिभाषा है ?

17 वर्ष के लंबे समय तक न्यायिक प्रक्रिया का मंथन कर जब इस तरह फैसला आता है तो क्यों न अपराधियों का मनोबल बढ़े ?

न्याय की जटिलता अगर अन्याय को प्रोत्साहन देती है तो क्या न्याय प्रणाली में संशोधन नहीं होना चाहिए ?

न्याय के साथ समग्र विकास करने वाली नीतिश सरकार को यह अवश्य सोचना चाहिए।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक : राजेंद्र कुमार बिंदल, द्वारा चंद्रशेखर मिश्रा का मकान, दूसरी लाइन, इटारसी 461111 से प्रकाशित एवं दैनिक भास्कर प्रेस, पवारखेड़ा, जिला होशंगाबाद, म.प्र. से मुद्रित। **संपादक : सुनील।**